● णमुत्थुणं समणस्स भगवओ महावीरस्स ●

देव-द्रव्यादि व्यवस्था विचार

लेखक

आ. विचक्षण सूरीश्वरजी

प्रकाशक

श्री पार्श्वनाथ जैन श्वेतांबर मंदिर ट्रस्ट
२६७/२ न्यु टिम्बर मार्केट - भवानी पेठ
पुणे ४११ ०११ महाराष्ट्र ना आराधक भाईयो

समर्पण

इस पुस्तक प्रकाशन में जिनके मंगलमय आशीर्वाद प्राप्त हुए ऐसे परमशासन प्रभावक परमकृपानिधि परमाराध्यपाद प्रातः स्मरणीय पतागच्छाधिपति जैन शासन संरक्षक महाराष्ट्रदेशोध्द्धारक सुविशाल गच्छादिपति परम गुरुदेव पं. पू. आचार्यदेव श्रीमद् विजयरामचन्द्र सूरीश्वरजी महाराज साहेब पुनीत कर कमलों में सादर समर्पण।

नम्र सूचन

इस ग्रन्थ के अभ्यास का कार्य पूर्ण होते ही नियत समयावधि में शीघ्र वापस करने की कृपा करें. जिससे अन्य वाचकगण इसका उपयोग कर सकें.

● णमुत्थुणं समणस्स भगवओ महावीरस्स ●

देव-द्रव्यादि व्यवस्था विचार

लेखक

आ. विचक्षण सूरीश्वरजी

प्रकाशक

श्री पार्श्वनाथ जैन श्वेतांबर मंदिर ट्रस्ट
२६७/२ न्यु टिम्बर मार्केट - भवानी पेठ
पुणे ४११ ०११ महाराष्ट्र ना आराधक भाईयो

प्रकाशक

श्री पार्श्वनाथ जैन श्वेतांबर मंदिर ट्रस्ट
२६७/२ न्यु टिम्बर मार्केट - भवानी पेठ
पुणे ४११ ०११ महाराष्ट्र ना आराधक भाईयो

पुस्तक छपाववामा लाभ लेनार भाग्यशाली ओनी

नामावली

पुस्तको	
३००	**संघवी वीरचंद हुकमाजी पुणे**
१००	**शा. मोटमलजी कपूरजी**
१००	**ओसवाल आराधक बेनो**
१००	**शा. देवीचंद कुपाजी ह. रमणभाई**
२००	**टिम्बर मार्केट नी आराधक बेनो**
१००	**संघवी हंसराजजी राताचंदजी**
१००	**श्री चिंतामणी पार्श्वनाथ जैन श्वे. मंदिर ट्रस्ट बुधवार पेठ, ह. - संघवी भिकुभाई रवचंद**

Consultant :

Shree Ashish V. Shah
1908, Market Road,
Camp, Pune - 411 001.
Phone : 657760

दो शब्द

परम शासन प्रभावक व्याख्यान वाचस्पति सुविशाल गच्छाधिपति प.पू. आचार्य देव श्रीमद् विजय रामचन्द्र सुरीश्वरजी मा. सा. की. पुनित आज्ञा से रतलाम नगरमे हमारा चातुर्मास हुआ. चातुर्मास दरम्यान कई भावुक लोगोने कहा कि जैन शासन के सिद्धान्तोकी तथा विधि विधानी की जानकारी के लिए जैन शासन के साहित्यका सर्जन गुजराती वगेरे भाषामे जितना उपकारी महापुरुषोने किया है उतना हिन्दी भाषामे नही किया तथा गीतार्थ सद्गुरु भगवन्तो का हिन्दी भाषी मध्यप्रदेश आदि देशोमे आवागमन भी कम है. इस कारण इन देशोमे जैन प्रजा धर्माराधना के विधि विधानमे तथा वहीवटी कार्योमें अत्यन्त अनिभिज्ञ रही है अैसी भावुक लोगोकी प्रेरणा पाकर चातुर्मास के प्रारंभ मे ''दर्शन पूजन विधी'' नामके पुस्तक का पुन: प्रकाशन किया और अन्तमें ''देवद्रव्यादि व्यवस्था विचार'' नामकी दुसरी पुस्तक का प्रकाशन कीया।

शास्त्रादि की दृष्टिसे इस पुस्तकमे कोई क्षति न रहने पावे इहलीए गच्छाधिपति आचार्य, देवं श्रीमद् विजय रामचन्द्र सूरीश्वरजी मा. सा. के पुनित निश्रावर्ती विद्वद्वर्य मुनिराज (पन्यास) श्री हेमभूषण विजयजी मा. सा. को. इस पुस्तक मे लिखे साहित्यका मेटर देखने के लिए भेजा गया. गच्छाधिपति अचार्य देवकी अनुज्ञासे उन्होने तथा विद्वद्वर्य मुनिराज श्री कीर्तीयश विजयजी मा. सा. इन दोनो महात्माओ ने सारे साहित्यको कालज़ी पूर्वक पढकर भाषादि की दृष्टिसे जो क्षतिया थी उसका सुधार करने का तथा जरुरी वस्तुकी पूर्ति करनेका सहयोग दिया वह कभी भी भूला नहि जा सकता!

इस पुस्तक के प्रकाशन मे उदार दिल मुमुक्षरत्न सुश्रावक शांतिलालजी जावरावालोने शुभ प्रेरणा को पाकर अपनी भगवती प्रवज्या के अनुमोदन निमित्त अपने द्रव्य का सद्व्यय करके पुण्य लाभ लीया!

"देवद्रव्यादि व्यवस्था विचार" नाम के इन पुस्तको का प्रचार मध्यप्रदेश राजस्थानादि देशोमे विपुल प्रमाणसे हुआ फीरभी गांव गाव में यह पुस्तके नही पहुंची क्योकी मात्र हजार प्रति ही उसकी छपी थी। वाचक वर्गकी मांग चालु ही चालु रही इस कारण वापीस उसकी दुसरी आवृत्ति के प्रकाशन करनेका प्रसंग आया इस "देवद्रव्यादि व्यवस्था विचार" नाम के पुस्तक की दुसरी आवृत्ति के प्रकाशन करने मे प्रवचनकार संयमरत्न मुनिराज श्री भुवनरत्न विजयजी मा. सा. के. सदुपरदेशसे–

श्री पाश्र्वनाथ जैन श्वे. मंदिर ट्रस्ट के आराधक भाईयोने अपने द्रव्यका प्रदान करके सहयोग देनेका अपुर्व पुण्य लाभ लीया।

इस छोटेसे पुस्तक में मंदिरादि धर्म स्थानोका तथा देव द्रव्यादि धर्म द्रव्यका वहीवट कैसे करना इस बात पर थोडासा प्रकाश डाला है। अत: इस पुस्तक को पढकर प्रत्येक वहिवटदार श्रावक देवद्रव्यादि की व्यवस्था शास्त्राज्ञाकी मर्यादामे रह कर करने की कालजी रखे ताकि वहीवट करते संसारमे डुबना न हो आत्माका अहित न होवे इस पुस्तकका पूरे ध्यान से वांचन करके शास्त्र मर्यादा मुताविक वहीवट करके उत्तरोत्तर सद्गति तथा परमपद के भोक्ता बनो यही अन्तिम शुभाभिलाषा!

लि. विचक्षणसूरी

ॐ ह्रीं श्री अर्हं नमः

देव द्रव्यादि व्यवस्था विचार

वीतरागसपर्याया-स्तवाज्ञा-पालनं परं।
आज्ञाऽऽराद्धा विराद्धा च शिवाय च भवाय च।

कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य भगवन्त श्री हेमचन्द्र सूरीश्वरजी महाराजा वीतराग परमात्मा की स्तवना करते हुए फरमाते है कि-हे वीतराग परमात्मा! आपकी पूजा की अपेक्षा से आपकी आज्ञा पालन करना श्रेष्ठ है। क्योंकि आज्ञा का आराधन मोक्ष के लिए होता है और आज्ञा का विराधन संसार के लिए होता है।

जिनेश्वर भगवान के शासन में पूजादि धर्म क्रियाओं से जिनेश्वर भगवन्त की आज्ञा का महत्व ज्यादा है। पूजादि धर्मक्रियायें जिनाज्ञा के अनुसार की जावे तो वे संसार सागर से पार कर मोक्ष में पहुँचाने वाली बनती है जिन धर्म-क्रिया में जिनाज्ञा का अनुसरण नहीं वे धर्म क्रिया संसार वृद्धी का कारण बनती है आज्ञा का आराधन मुक्ति का कारण है और आज्ञा का विराधन संसार का कारण है अतः हरेक आराधक को प्रत्येक धर्म क्रिया में जिनाज्ञा का अनुसरण अनिवार्य है।

देव द्रव्यादि धर्म द्रव्य की व्यवस्था करना यह भी एक

अति उत्तम धर्म कार्य है। यह कार्य भी जिनाज्ञा के अनुसार ही होना चाहिये। जिनाज्ञा के अनुसार देव द्रव्यादि धर्म द्रव्य की व्यवस्था का कार्य करने से पुण्यानुबन्धी पुण्य का बन्ध होता है स्वर्गीय सम्पत्ति मिलती है। अल्प काल में मुक्ति हो जाती है और यावत् तीर्थंकर नाम कर्म का बन्ध भी होता है। यदिं जिनाज्ञा के विरुद्ध यह धर्म कार्य किया जावे तो भयंकर पापों का बन्ध होता है। जिसके परिणाम में आज्ञा विरुद्ध धर्म द्रव्य की व्यवस्था करने वाले को नरक तिर्यंचादि की दुर्गति में जाना पड़ता है। संसार के अन्दर अनन्त काल तक चोरासी के चक्कर में बुरे हाल से घूमना पड़ता है। और असह्य दुःख यातनायें भोगनी पड़ती है।

जितना ही धर्म द्रव्य की व्यवस्था का कार्य लाभदायी हैं उतना ही यदि जिनाज्ञा को छोड़कर अपने मनमाने ढ़ंग से यह कार्य किया जावे तो आत्मा के लिए नुकसानकारी हो जाता है। इसलिए धर्म द्रव्य की व्यवस्था करनेवाले ट्रस्टी वर्ग को धर्म द्रव्य की व्यवस्था का (वहीवटी कार्य) भली भांति से करना है और वास्तव में लाभ उठाना है तो उनको धर्म द्रव्य की व्यवस्था के कार्य में कदम कदम पर जिनाज्ञा का विचार और पालन करना होगा। जिनाज्ञा को कुचल करके स्वच्छंद रीति से करना है तो बेहतर है कि ट्रस्टी पद छोड़ देना। धर्म द्रव्य की व्यवस्था के कार्य में हाथ ही नही डालना। अन्यथा डूब जाओगे।

अरिहंत परमात्मा की आज्ञानुसार देव द्रव्यादि धर्म द्रव्य का वहीवट करने वाले को क्या लाभ होता है उसका वर्णन द्रव्य सप्ततिका ग्रन्थ में इस तरह किया गया है –

एवं नाउण जे दव्वं वुड्ढिं निंति सुसावया।
ताण रिद्धी पवड्ढेई कित्ती सुखं बलं तहा।
पुत्ता य हुँति से भत्ता सोंडीरा बुद्धिसंजुआ।
सव्वलक्खणसंपुण्णा सुसीला जणसम्मया।।
जिणवयणवुड्ढिकरं पभावगं नाणदंसणगुणाणं।
वुड्ढंतो जिणदव्वं तित्थयरत्तं लहइ जीवो।।

देव द्रव्यादि धर्म द्रव्य की व्यवस्था करने की विधि को जानकर जिनाज्ञा मुताबिक धर्म द्रव्य का वहीवट करने वाला सुश्रावक इस भव में तथा आगामी भव में धन सम्पत्ति आदि का पुण्यानुबन्धी वैभव प्राप्त करता है यशःकीर्ति को प्राप्त करता है। शारीरिक तथा मानसिक सुख को प्राप्त करता है। परोपकारादि के धर्म कार्य करने में उपयोगी शारीरिक बल प्राप्त करता है। बुद्धिशाली-सदाचारी भक्ति सम्पन्न-शूरवीर ऐसे पुत्रों की प्राप्ति होती है तथा उच्चकुल में जन्म, जगह जगह पर सत्कार सम्मान पूजा, उदारता, गंभीरता, विवेकिता, दुर्गति नाश, निरोगता, दीर्घायुष्कता, रूप सौंदर्य सौभाग्य, धर्माराधना करने का अवसर इत्यादि अनेक विध लाभों को प्राप्त करता है।

जिन प्रवचन की वृद्धि और ज्ञानादि गुणों की प्रभावना देव द्रव्यादि से होती है। देव द्रव्यादि द्रव्य संघ में विपुल प्रमाण से होवे तो वह संघ अपने गांव में अथवा अन्य गाँवों में जीर्ण शीर्ण मन्दिरों का उद्धार कर सके या नये गगन चुंबी मन्दिरों का निर्माण कर सके। गांव गांव में अनुपम कोटि के मन्दिरादि धर्मस्थान होवे तो प्रभाव सम्पन्न आचार्य भगवन्त आदि साधुगण का पदार्पण होता रहे और वे उपदेश का स्रोत बहाते रहे। उनके उपदेश की प्रेरणा पाकर कई जन वैरागी बन संसार को छोड़ संयम मार्ग का स्वीकार करके ज्ञानादि गुणों की प्राप्ति करे और कई भावुक लोग महोत्सव आदि शासनोन्नति के कार्य करके जिन शासन की प्रभावना करे। इस प्रकार देवद्रव्यादि धर्म द्रव्य ज्ञानादि गुण की वृद्धि और जैन शासन की प्रभावना कराने में कारण होने से उसका संरक्षणादि की व्यवस्था सुन्दर ढंग से करने वाला सुश्रावक तीर्थंकर पद को भी प्राप्त करता है तथा वह अल्प संसारी बन जाता है —

उसी प्रकार यदि आदमी जिनाज्ञा के विरुद्ध अपनी इच्छा मुताबिक वहीवट करे तो उसको क्या नुक़सान होता है उसका वर्णन भी द्रव्य सप्तत्ति का ग्रन्थ में इस तरह फरमाया है।

भक्खेइ जो उविक्खेइ जिणदव्वं तु सावओ।

पण्णाहीणो भवे जीवो लिप्पइ पावकम्मुणा।।

देव द्रव्यादि द्रव्य का कोई भक्षण करे तथा दूसरे किसी को भक्षण करते देखने पर भी उसकी उपेक्षा करे तथा प्रज्ञाहीन जीव हो जावे याने वहीवट करने वाला विचार किये बिना मंदिरादि के कार्य में ज्यादा खर्च करे अथवा चोपड़े में खोटा नामा लिखे तथा झुठे लेख दस्तावेज वगेरे करे तो वह वहीवटदार गाढे पापों का बन्ध करता है।

जिणवरआणारहियं वद्धारंता वि जिणदव्वं।
बुड्डुन्ति भवसमुद्दे मूढा मोहेण अण्णाणा।।

जिनेश्वर भगवन्त की आज्ञा का पालन किये बिना देवद्रव्यादि की वृद्धि जो वहीवटदार श्रावक करता है वह मूढ है अज्ञान है और वह भगवान की आज्ञा का भंग करने से संसार सागर में डूबता है।

अतः देव द्रव्यादि धर्म द्रव्य का वहीवट करने वाले श्रावकों को वहीवट करने के सर्वोत्तम कार्य में जिनाज्ञा को नहीं भूलनी चाहिये।

देवद्रव्यादि धर्म द्रव्य की व्यवस्था के अधिकारी कौन?

धर्म द्रव्य की सम्पत्ति का संरक्षण संवर्धन और सद्व्यय

की व्यवस्था के लिए जैन संघ व्यवस्थापक वंहीवटदारों को नियुक्त करता है। उनकी जानकारी के लिए धर्म द्रव्य की व्यवस्था करने के लिए कैसे आदमी अधिकारी होते है उसका स्वरूप पंचाशक प्रकरण ग्रन्थ के अनुसार द्रव्य सप्तत्तिका ग्रन्थ में महोपाध्याय श्री लावण्य विजयजी गणिवर ने इस तरह बताया है।

अहिगारी य गिहत्थो-सुयणो वितिमं जुओ कुलजो।
अखुद्दो घिइबलीयो मइमं तह धम्मरागी य।।
गुरुपूजाकरणरइ-सुस्सुसाइगुणसंगओ चेव।
णायाहिगयविहाणस्स धणियमाणापहाणो य।।

वास्तवमें एसे गुणावाला श्रावक देव द्रव्यादि धर्म द्रव्य का और धर्म स्थानों का वहीवट करने में अधिकारी कहा गया है।

(१) जिसका स्वजन कुटुंब अच्छा होवें।

धर्म विरुद्ध और लोक विरुद्ध कार्य नहीं करने वाला कुटुंब अच्छा कुटुंब कहा जाता है ऐसा कुटुंब वाला धर्मद्रव्य तथा धर्म स्थानों के वहीवट करे तो उसके शुभ भावो की वृद्धि हो सके अन्यथा कुटुंब के सदस्य धर्मविरुद्ध अथवा लोक विरुद्ध कार्य करें तो अनेक प्रकार की विपत्तिया आने के वजह से वहीवट करने वाले का दिमाग आर्त रौद्र ध्यान के संक्लेश

से ग्रस्त रहे अतः उनको शुभ भाव की वृद्धि की संभावना ही नहीं रहती।

(२) न्यायोपार्जित धनवाला।

न्याय से धन कमानेवाला हो।

(३) योग्य

राजादि द्वारा सन्माननीय। इसका कोई भी पराभव नहीं कर सके।

(४) उत्तम कुलोत्पन्न

उत्तम कुलमे जन्मा आदमी धर्म द्रव्यादि के वहीवट के कार्यों को अच्छी तरह पूर्णता तक पहुंचा सकता है। हलके कुल वाला तो बाधा या कठिनाई पड़ने पर बीच में से ही कार्य को छोड़ देता है।

(५) अक्षुद्र--हृदय की विशालता वाला

यह समस्त कार्यो को सुन्दर ढंग से कर सकता है। क्षुद्र आदमी से तो कंजुसाइ वगैरे करने के कारण कार्य बिगड़ जाते है।

(६) धृति बलवाला

यह आदमी कितनी ही कठिनाई वाले कामों में अपने मनको स्थिर, और समभाव में रख सकता है और काम को

अधबीच छोड़े बिना व्यवस्थित रूप में पूरा करता है।

(७) मतिमान् -

बुद्धिशाली मनुष्य अपनी बुद्धि से कार्यो में आती हुई कठिनाइओं को अच्छी तरह से दूर कर सकता है।

(८) धर्म रागी -

धर्म कार्य करते समय कभी भी अधर्म की प्रवृत्ति न हो जाय, उसकी सावधानी रंखने वाला होता है।

(९) गुरु भक्त

गुरु भगवन्त इसको देव द्रव्यादि धर्म द्रव्यादि का वहीवट ठीक तौर पर कैसे करना, यह समझा सके तथा समझ कम होने की वजह से जिनाज्ञा के विरुद्ध वहीवट करने से रोक भी सकें।

(१०) शुश्रूषादि बुद्धि के आठ गुण युक्त

इन्हे धर्म तत्वो की समझदारी अच्छी प्राप्त होने से ये धर्म द्रव्यादिका वहीवट सोच समझ कर जिनाज्ञा के अनुसार कर सकते हैं।

(११) देवद्रव्यादि की वृद्धि वगेरे के उपायों का ज्ञाता -

यह श्रावक सही रूप से धर्म द्रव्यादि का वहीवट कर सकता है उसके द्वारा नुकसानी का संभव नही।

(१२) जिनाज्ञा को प्रधान मानने वाला -

यह एक भी देव द्रव्यादि धर्म द्रव्य के वहीवट का कार्य जिनाज्ञा के विरूद्ध नहीं करेगा।

श्री जैन संघ को ऐसे १२ गुण सम्पन्न सुश्रावक को देव द्रव्यादि धर्म द्रव्य के तथा मन्दिर उपाश्रयादि धर्म स्थानों के वहीवट में ट्रस्टी तरीके वास्तव में अधिकारी होने से नियुक्त करना चाहिए।

ट्रस्टी गण को सात क्षेत्र, सात क्षेत्र का द्रव्य, सात क्षेत्र में आवक के उपाय, किस क्षेत्र का द्रव्य किस क्षेत्र में उपयोगी हो सकता है किस क्षेत्र में नही हो सकता तथा सात क्षेत्र के द्रव्य का कैसे संरक्षण संवर्धन-सद्व्यय करना यह सब जिनाज्ञानुसार कैसे होवे उसकी जानकारी सही तौर पर प्राप्त करनी चाहिए।

(१) अरिहन्त परमात्मा के शासन में ये सात क्षेत्र हैं -

(१) जिन प्रतिमा (२) जिन मंदिर (३) सम्यग् ज्ञान (४) साधु (५) साध्वी (६) श्रावक (७) श्राविका।

(२) सात क्षेत्र द्रव्य -

यह सात क्षेत्र सद्गृहस्थों को लक्ष्मी का सद्व्यय करके धर्म बीज बोने के लिए है। सद्गृहस्थ इन सात क्षेत्रों में शक्ति अनुसार अपनी धन सम्पत्ति का सद्व्यय करके अपूर्व पुण्य

लाभ लेते है। इन सात क्षेत्र में जो धन सम्पत्ति आती है उसे सात क्षेत्र का धर्म द्रव्य कहा जाता।

अनुकम्पा जीवदया तथा शुभ खाते में आया हुआ द्रव्य को भी धर्म द्रव्य कहा जाता है।

सात क्षेत्र में आवक के उपाय –

जिन प्रतिमा की पूजादि के लिए अर्पित द्रव्य प्रतिमाजी के अंग तथा अग्र पूजा का द्रव्य, जिन मंदिर के निर्माण तथा निभाव में अर्पित द्रव्य तथा गुरू की अंग तथा अग्र पूजा का तथा गुरू पूजा की बोली का द्रव्य देवद्रव्य गीने जाते है। देवद्रव्य में आवक अनेक उपायों से होती –

प्रभुजी के मंदिर या बहार कोई भी स्थल में बोली बोली जाने से, जैसे-च्यवन कल्याणक निमित्त सपनाजी की बोली। जन्म कल्याणक निमित्त पारणा का चढ़ावा। स्नात्राभिषेक (पखाल) का चढ़ावा। दीक्षा-केवलज्ञान-निर्वाण कल्याणक निमित्त अंजनाशलाकादि के महोत्सव में होते चढ़ावे। केसर चंदनादि पूजा के चढ़ावे। प्रभुजी की प्रतिष्ठादि के चढ़ावे। तथा दीक्षा उपधानादि के समय में नाण का नकरा, उपधान के माल की बोली, प्रभुजी के वरघोड़े की बोली।

गुरू पूजन के चढ़ावे की बोली। सोना महोर रुपये आदि से गुरु की अंग या अग्र पूजा तथा जहां कहां पर

गुरुभगवंतों को कंबल वगेरे वहेराने की बोली बोलने का रीवाज हो वहां गुरु भगवन्तो को कंबली वगेरे वहेराने का चढ़ावा वगेरे देवद्रव्य की आमदानी के उपाय है।

(२) ज्ञानद्रव्य के आवक के उपाय –

आगमादि शास्त्र को वहेराने तथा पूजन की बोली। सोना महोर रुपये वगेरे से शास्त्र का पूजन करना। सांवत्सरिक प्रतिक्रमणादि में प्रतिक्रमण के सूत्रों की बोली इत्यादि उपायो से ज्ञानद्रव्य की आमदानी होती है।

(३) साधु-साध्वी क्षेत्र में द्रव्य के आवक के उपाय –

कोई सद्गृहस्थ श्रावक श्राविका ने साधु साध्वी की वैयावच्च भक्ति निमित्त द्रव्य देना अथवा तन्निमित्त संघ में चंदा करना। दीक्षा के समय संयम के उपकरण की बोली इत्यादि।

(४) श्रावक श्राविका क्षेत्र में आवक के उपाय –

आर्थिक परिस्थिति से संकट ग्रस्त श्रावक श्राविका के जीवन निर्वाह सुस्थित बन कर उनकी धर्माराधना अच्छी तरह बनी रहे इसलिये श्रीमंत श्रावक श्राविका लोक उन संकट ग्रस्त साधार्मिक को अपने घर पर निमन्त्रण कर उनकी आपत्ति नष्ट हो जाय इस ढंग से उनकी पहेरामणी आदि से भक्ति करे। संकट ग्रस्त साधार्मिक के ऊपर अनुकंपा व दया का भाव न होना चाहिये क्योंकि दुःखित अवस्था में रहा हुआ साधार्मिक

भी अनुकंपनीय व दयनीय नहीं है। किसी भी अवस्था में रहा हुआ साधार्मिक भक्ति का ही पात्र है, इसलिये प्रत्येक अवस्था में उनके प्रति भक्ति भाव ही होना चाहिये। साधार्मिक की भक्ति उनके उद्धार के लिये ही नही है बल्कि संसार सागर से अपना उद्धार करने के लिये है।

जब स्वयं इस ढंग से भक्ति करने को समर्थ न होवे तब साधार्मिक भक्ति के लिये चंदा आदि में अपनी धन सम्पत्ति का दान करे अथवा श्रीसंघ तन्निमित्त चंदा करे इत्यादि।

देवद्रव्य का उपयोग –

जैन शासन की ऐसी मान्यता है कि सात क्षेत्रों में नीचे से लगाकर उपर के क्षेत्र एक-एक से अधिक पवित्र और उच्च कक्षा के है। अतः उच्च कक्षा के क्षेत्र का द्रव्य नीचली कक्षा के क्षेत्र में उपयुक्त नही किया जा सकता जरूरत पड़े तो नीचली कक्षा के क्षेत्र का द्रव्य उच्च कक्षा के क्षेत्र के उपयोग में ले सकते है। ऐसी शास्त्राज्ञा है जैसे-ज्ञानादि द्रव्य जिन मंदिर तथा जिनमूर्ति के क्षेत्र के उपयोग में आ सकते है लेकिन जिन मंदिर तथा जिन मूर्ति के क्षेत्र का द्रव्य ज्ञान साधु साध्वी आदि के क्षेत्र में उपयोग करना उचित नही है। उसी तरह साधु आदि क्षेत्र का द्रव्य सम्यग् ज्ञान के उपयोग में ले सकते हैं लेकिन ज्ञान द्रव्य का उपयोग साधु आदि क्षेत्र में करना समुचित नही है तथा साधु साध्वी के क्षेत्र में श्रावक

श्राविका क्षेत्र का-द्रव्य वापर सकते है लेकिन साधु साध्वी के क्षेत्र का द्रव्य श्रावक श्राविका के क्षेत्र में नही वापर सकते।

च्वयन कल्याणक निमित्त जो चोदाह स्वपनाजी की बोली होती है। उसका द्रव्य भी देव द्रव्य में ही जाता है। उसको साधारण में ले जाना, साधारण रूप से उसका उपयोग करना ये शास्त्र और शास्त्र सम्मत परम्परा से तद्‌दन विरूद्ध है। उसमें भयंकर पाप है।

जिन मंदिर का नव निर्माण तथा जीर्ण शीर्ण जिन मंदिरो का उद्धार तथा उसकी रक्षा सुव्यवस्थित रूप से होवे इसलिये पूर्वाचार्यो ने स्वप्न बोली का द्रव्य देव द्रव्य में ही जावे इस उद्देश से कई सालो के पूर्व में स्वप्न बोली का प्रारंभ किया। कोनसी साल में किया उसका पता नहीं है लेकिन यह शुभ प्रणालिका जब से शुरू हुई तब से सकल संघ में निर्णित उद्देश के रूप में ही मान्य रही है लेकिन इस शैके में कितनेक बिन श्रद्धालु ट्रस्टी वर्गने अपनी स्वार्थ और सुविधा के लिए स्वप्न बोली का द्रव्य कई गांवो में साधारण के अन्दर लेकर दुरूपयोग किया और इसमें शास्त्र और शास्त्र मान्य परंपरा को नहीं मानने वाले सुधारक आचार्यादि साधुओं ने खुल्ले आम सम्मति देने का घोर पाप किया। अभी भी कई गांवो में स्वप्न बोली का द्रव्य को साधारण में लेकर साधारण के कार्य में उपयोग करने का पाप चल रहा है। जहां

जहां यह प्रवृत्ति होवे उसका सुधारा करके स्वप्नद्रव्य को देव द्रव्य में लेकर मंदीर के जीर्णोद्धारादि के शुभ कार्य में ही उसका सदुपयोग करना चाहिए।

स्वप्न बोली का द्रव्य देव द्रव्य में ही लेना चाहिए ऐसा शास्त्रीय निर्णय अहमदाबाद के अन्दर विक्रम संवत् १९९० की साल में हुए मुनि सम्मेलन में श्वेताम्बर मुर्ति पूजक संघ के आचार्यादि मुनि भगवन्तो ने किया उसका पट्टक इस प्रकार है।

मुनी सम्मेलन नो निर्णय देवद्रव्य (ठराव २)

१) देवद्रव्य - जिन चैत्य तथा जिन मूर्ति सिवाय बिजा कोई पण क्षेत्रमां न वपराय।

२) प्रभुना मंदिर के बहार गमें ते ठिकाणे प्रभुना निमित्ते जे जे बोली बीलाय ते सधलु देव द्रव्य कहेंवाय।

३) उपधान संबन्धी माला आदि नी उपज देव द्रव्यमां लइ जवी योग्य जणाय छे।

४) श्रावकोए पोताना द्रव्यथी प्रभु पूजा वगेरेनो लाभ लेवो ज जोइए परन्तु कोई स्थले अन्य सामग्रीना अभावे प्रभुनी पूजा आदिमां वांधो आवतो जणाय तो देव द्रव्य मांथी प्रभुनी पूजा आदिनो प्रबन्ध करी लेवो परन्तु प्रभुनी पूजादि ते जरुर थवी जोइए।

५) तीर्थ अने मंदिरोना वहीवटदारोए तीर्थ अने मंदिर सम्बन्धी कार्य माटे जरुरी मील्कत राखी बाकीनी मील्कतमांथी तीर्थोद्धार अने जीर्णोद्धार तथा नवीन मंदिरो माटे योग्य मदद आपवी जोइए, एम आ मुनी सम्मेलन भलामण करे छे।

विजय नेमिसूरी जयसिंह सूरि विजयसिद्धि सूरि
आनंद सागर विजय वल्लभ सूरि विजयदान सूरि
विजयनीति सूरी मुनि सागरचन्द विजय भूपेन्द्र सूरि

अखिल भारत वर्षीय जैन श्वेतांबर मुनिसम्मेलने सर्वानुमते आ पट्टक रूपे नियमो कार्या छे तेनो असल पट्टक शेठ आणंदजी कल्याणजीनी पेढीने सोंप्यो छे।

श्री राजनगर जैन संघ
बंडा वीला ता. १०-४-३४

कस्तुरभाई मणीभाई

यह ठराव के अनुसार १४ स्वप्ना की बोली प्रभु के च्यवन कल्याणक निमितक होने से प्रभु निमित की ही बोली होने से इस बोली का द्रव्य भी देव द्रव्य में ही लेना चाहिए।

साधारण द्रव्य की उपज करने के लिए चार आना या आठ आना विगेरे स्वप्न की बोली के उपर जो सर्चार्ज लगाया जाता है और वह सर्चार्ज में आये धन को साधारण द्रव्य मान साधु आदि की भक्ति के उपयोग में लेते हैं वह बहुत ही अनुचित हैं उसमें देव द्रव्य की आमदानी में घाटा पड़ने से उसके भक्षण करने का और कराने का बड़ा भारी पाप लगता है। जैसे आदमी को ५०० रुपैये स्वप्नाजी की बोली में खर्चना है तो वह बोली पर सर्चार्ज लगाया हो के न

लगाया हो तो भी ५०० रु. ही खर्चेगा, सर्चार्ज लगाया तो वह निर्धारित रकम से ज्यादा खर्चेगा एसा तो है ही नही अत: सर्चार्ज लगाइ बोली में जो ५०० रुपैये खर्चे उसमें से ४००-४५० रुपैये देव द्रव्य में लीये गये और १०० या ५० साधारण में लीये १०० या ५० रु. का देव द्रव्य में घाडा पड़ा। यदि बोली पर सर्चार्ज न लगाया होता तो ५०० रुपैये देव द्रव्य में ही जाते धाढा पड़ने की कोई आपत्ती ही नही आती। इस कारण स्वप्नाजी वगेरे की बोली पर सर्चार्ज लगाना और सर्चार्ज में आये पैसे को साधारण खाते में लेना कीसी भी तरह से युक्त नहीं है।

उसी तरह गुरू के एकांग या नवांग पूजा का-गुरू की अग्र पूजा का तथा गुरू पूजाभक्ति निमित बोले चढ़ावे का द्रव्य भी देव द्रव्य में ही लेना चाहिए लेकिन कई गांवो में गुरू की अंगअग्र पूजा का तथा गुरू भक्ति निमित बोले चढ़ावे के द्रव्य को साधु आदि की वैयावच्च खाते में लेकर गुरू भक्ति वगेरे में उपयोग करते हैं यह प्रवृत्ति भी शास्त्र विरुद्ध है।

द्रव्य सप्तति का वगेरे कई शास्त्रों में ये द्रव्य का देव द्रव्य में ले जाने का विधान कीया है ये रहे इन विधान के पाठ —

बालस्य नामस्थापनावसरे गृहादागत्य सबाल: श्राद्ध:

वसतिगतान् गुरून् प्रणम्य नवभिः स्वर्णरुप्यमुद्राभिर्नवांगपूजां कृत्वा गृह्यगुरुदेवसाक्षिकं दत्तं नाम निवेदयति। तत उचितमंत्रेण वासमभिमन्त्र्य गुरू ॐकारादिन्यासपूर्वं बालस्य स्वसाक्षिकां नामस्थापनामनुज्ञापयति

तथा द्विस्त्रिर्वाऽष्टभेदादिका पूजा संपूर्णदेववदनं चैत्येऽपि चैत्यानामर्चनं वंदनं वा स्नात्रमहोत्सवमहापूजाप्रभावनापि गुरोर्बृहद्वन्दनं अंगपूजा प्रभावना स्वस्तिकरचनादिपूर्व व्याख्यानश्रवणमित्यादि नियमा वर्षाचातुर्मास्यां विशेषतो ग्राहया इति। एवं प्रश्नोत्तरसमुच्चयाचारप्रदीपाचारदीनकर श्राद्धविद्याद्यनुसारेण श्रीजिनस्येव गुरोरपि अंगाग्रपूजा सिद्धा तद्धनं च गौरवार्हस्थाने पूजा सम्बन्धेन प्रयोक्तव्यमिति।

बालकका नामस्थान करने के वखत में श्रावक अपने बालक को लेकर घर से निकल के गुरू महाराज के उपाश्रय में आवे वहां गुरू महाराज को प्रणाम करके नव सूवर्ण या चांदी के महोर से गुरू की नवांग पूजा करके गृहस्थ गुरू और देव की साक्षी में कीया हुआ नाम निवेदन करे तत्पश्चात् गुरू महाराज योग्य मंत्र से वासकेप को मंतर कर ॐकारादि न्यास पूर्वक वासकेप डाल कर अपनी साक्षी से उस बालक का नाम स्थापन की अनुज्ञा देवें।

तथा दो बार या तीन बार अष्टभेदी पूजा-संपूर्ण देव वंदन, बड़े मंदिर में सकल जिनबिम्बो की पूजा वंदना-स्नात्र

महोत्सव महा पूजा प्रभावना विगेरे-गुरू को बड़ा (द्वाद्वशावर्त) वंदन गुरू की अंग पूजा तथा प्रभावना प्रथम स्वस्तिक की रचना करके व्याख्यान श्रवण करना इत्यादि नियमोको चोमासे में विशेष करके ग्रहण करने चाहिए।

इस तरीके से प्रश्नोत्तर समुच्चय आचार-प्रदीप -आचार दीनकर तथा श्राद्धविधि वगेरे ग्रन्थों में कथन किया गया है इनके अनूसार से श्री जिनेश्वर भगवान के जैसे गुरू की अंग पूजा तथा नवांग पूजा और अग्र पूजा प्रामाणिक रूप से सिद्ध होती है उसमें आया हुआ धन पूजा के सम्बन्ध से गौरवता वाले स्थान में लेना चाहिए याने गुरू से भी ज्यादा पूजनीय देवाधिदेव है उस स्थान मैं याने जिनमंदिर और जिनमूर्ति क्षेत्र के देव द्रव्य में गुरूपूजा के द्रव्य को लेना चाहिए।

श्री सिद्धसेन दिवाकर वगेरे आचार्य भगवन्तो ने अपनी पूजा में आये धन को गुरू वैयावच्च वगेरे में न लेकर जिनमंदिरों के जिर्णोद्धारादि के कार्यो में उपयुक्त करवाया। उसकी साक्षि के यह शास्त्र पाठ है।

धर्मलाभ इति प्रोक्ते दुरादुच्छ्रितपाणये सुरये सिद्धसेनाय ददौ कोटिं नराधिप इति इदं चाग्रपूजारूपं द्रव्यं तदानीं संघेन जीर्णोद्धारे तदाज्ञया व्यापरितं।

तथा हेमचन्द्राचार्याणां कुमारपालराजेन अष्टशतसुवर्णकमलैः प्रत्यहं पूजा कृताऽस्ति तथा जीवदेवसूरीणां पूजार्थं अर्द्ध लक्षद्रव्यं

मल्लश्रेष्ठिना दत्तं तेन च प्रसादाद्यकार्यन्त सूरिभिः।

तथा धारायां लघुभोजेन श्री शांतिवेताल सुरये १२६०००० द्रव्यं दत्तं। तन्मध्ये गुरुणा च द्वादशलक्षधनेन मालवान्तश्चैत्यान्यकार्यन्त। षष्टिसहस्रद्रव्येण च थिरापद्रे चैत्यदेवकुलिकाद्यपि।

तथा सुमतिसाधुसुरिसाधुसूरिवारके मंडपाचलदुर्गे मलिकश्रीमाफराभिधानेन श्राद्धादिसंसर्गाज्जैनधर्माभिमुखेन सुवर्णटंककैर्गीतार्थनां पूजा कृतेति वृद्धवादोऽपि श्रूयते।

उंचे हाथ करके "धर्मलाभ" इस तरह का आर्शीवाद देने वाले श्री सिद्धसेन दिवाकर सूरि को विक्रम राजा ने एक करोड़ द्रव्य दीया यह द्रव्य अग्र पूजा रूप था उसको श्री संघ ने श्री सिद्धसेन दिवाकर सूरी की आज्ञा से मंदिरो के जीर्णोद्वार में उपयोग किया।

आचार्य भगवन्त श्री हेमचन्द्र सूरिकी भी कुमारपाल महाराज हर हम्मेश १०८ स्वर्ण कमल से पूजा करता था।

आ. भ. श्री जीवदेव सूरी की पूजा में आधा लाख द्रव्य मल्लश्रेष्ठि ने दिया था उससे उन्होंने जिन मंदिरादि करवायें।

धारा नगरी में लघुभोज राजा ने वादी वेताल श्री शांतिसूरी को १२ लाख ६० हजार रुपये दिये। उसमें से १२ लाख के धन से मालवा देश में मंदिर बनवाये और ६०

हजार के द्रव्य से थिराप्रद में जिनमंदिर देवकुलिका वगेरे करवाई।

श्री सुमति साधु सूरी के वखत में मंडपाचलदुर्ग में रहा हुआ श्रीमाफर नाम के मलिक ने जैन श्रावकों के परिचय को पाकर जैन धर्म के सन्मुख बनके सुवर्ण द्रव्य से गीतार्थ गुरू भगवन्तों की पूजा की थी ऐसा वृद्धवाद है।

गुरुपुजासत्कं सुवर्णादिद्रव्यं गुरुद्रव्यं गुरुमुच्चते।
तथा स्वर्णादिकं तु गुरुद्रव्यं जीर्णोद्धारे
नव्यचैत्यकरणादौ च व्यापार्यं।

गुरुपूजा में आया हुआ सुवर्णादि द्रव्य को गुरुद्रव्य कहा जाता है और सुवर्णादि गुरुद्रव्य का उपयोग जीर्णोद्धार तथा नुतन जिनमंदिर के निर्माण में करना चाहिये।

गुरू पूजा सत्कं सुवर्णादि रजोहरणाद्युपकरणवत् गुरू द्रव्यं न भवति। स्वनिश्रायामकृतत्वात्।

गुरू की पूजा में आया हुआ सुवर्णादि द्रव्य रजोहरणादि उपकरण के जैसा गुरू द्रव्य नही है क्योंकि गुरू का वह द्रव्य निश्रित नही है। गुरू द्रव्य भी दो प्रकार का है निश्रित और अनिश्रित याने गुरू की मालिकी का और बीन मालीकी का। रजोहरण मुहपत्ती पात्रादि वगेरे श्रावकादिने वहेराये हुए उपकरण साधु की मालीकी के होते है और गुरू की अंग

या अग्र पूजा में जो द्रव्य आता है उसकी मालीकी गुरू की नही होती है अत: उसका उपभोग रजोहरणादि उपकरण की माफक अपने उपयोग में लेकर नही कर सकते उस कारण पूजा निमित से आया द्रव्य गुरू से भी पूज्य स्थान जिन मंदिर तथा जिन मूर्ति के क्षेत्र में (देव द्रव्य में) जाना चाहिए। गुरु पूजा निमितक द्रव्य गुरुवैयावच्च में लेवे तो वह लेने वाला और जिसकी वैयावच्च में यह द्रव्य का उपयोग होवे वे गुरू महाराज भी देव द्रव्य के भक्षण करने वाले बनने से दुर्गति के संसार में डुबने वाले बनते है।

साम्प्रतिकव्यवहारेण तु यद् गुरून्युंछनादि साधारणं कृतं स्यात् तस्य श्रावकश्राविकाणामर्पणे। युक्तिरेव न दृश्यते शालादिकार्ये तु तद् व्यापार्यंते श्रद्धैरिति।

वर्तमान कालिक व्यवहार से गुरू के पूजा में लुंछणा करके जो रुपैयादि द्रव्य रखा जावे उस द्रव्य को साधारण द्रव्य गीना गया है लेकिन उसका उपयोग श्रावक श्रविका को देने में करने के लिये कोई युक्ति नहीं हैं। मात्र उपाश्रय पौषध शालादि धर्म स्थानों के उपयोग में ले सकते हैं।

पूर्व काल में यह प्रणालीका थी इसलिए सेनप्रश्न में लुंछणे का द्रव्य साधारण में लेने का कहा है- परंन्तु वर्तमान काल में बहुततया लुंछणा करके गुरू पूजा करने की प्रणालिका प्रचलित नहीं है।

कीतनेक इने गीने साधु लुंछणा करने की प्रेरणा (गुरू महाराज के सामने रुपैयादि तीन बार हाथ से गोल धूमा के रखो) करके गुरू पूजा करवाते हैं और वह द्रव्य को साधारण में डलवाते हैं और गुरू वैयावच्च में उपयोग करवाते हैं। यह प्रवृत्ति किसी भी रीत से उचित नहीं है प्रेरणा कीये बीना स्वाभाविक रीत से लुंछणा करके पूजा करे, वह बात अलग है और प्रेरणा करके करावे यह बात अलग है। स्वाभाविक रीत से बीना लुंछणे से गुरू पूजा श्रावकादि करते थे और वह द्रव्य देव द्रव्य में जाता था किन्तु उसको लुंछणा करने की प्रेरणा करके गुरू पूजा करवाके साधारण में लेने से देव द्रव्य में घाटा पाड़ने का बड़ा भारी दोष लगता है।

वर्तमान काल में बहुततया संघ में लुंछणा करके गुरू पूजा करने की प्रणालीका नहीं हैं। अतः गुरू पूजा निमित जो द्रव्य आवे उसको देव द्रव्य में लेना उचित है। परन्तु गुरुवैयावच्च में उपयोग करना उचित नही।

श्रावको ने स्वद्रव्य से प्रभु पूजा वगेरे का लाभ लेना चाहिए। परन्तु कीसी स्थल में अन्य सामग्री के अभाव में प्रभु पूजा आदि का बाध आता दीखाइ दे और श्रावक संघ प्रभु पूजादि करने में स्वयं असमर्थ होवे तो देव द्रव्य में से पूजादि का प्रबन्ध कर ले। लेकिन प्रभू पूजादि जरुर होनी चाहिए।

प्रभु प्रतिमा के लीए-पूजा के द्रव्य, लेप आंगी आभूषण

वगेरे से प्रभु भक्ति के लीए देव द्रव्य का खर्च कर सकते है।

जिर्णोद्धार मंदिर के समार काम तथा मंदिर संबंधी बांध काम, रक्षा कार्य, साफ सफाई वगेरे के कार्य में खर्च कर सकते हैं। प्रतिमा के उपर तथा मंदिर के उपर आक्रमण या आक्षेप के प्रतिकार तथा वृद्धि टीकाने के लिए खर्च कर सकते हैं।

उपर के तमान कार्यो के लीए उस मंदिर तथा बहार के दुसरे कोई भी मंदिर तथा प्रतिमा के लीए देव द्रव्य दीया जा सकता है।

इतना निश्चित रूप से ध्यान में रखना चाहिए कि वह देव द्रव्य श्रावक के कोई भी काम में नहीं वापरा जा सकता यदि पूजारी श्रावक होवें तो उसका पगार भी साधारण खाते में से देना चाहिए।

यहाँ एक बात यह भी ध्यानं में रहनी चाहिए कि जैनतर पूजारी का पगार भी साधारण में से हि देना चाहिए क्योंकि प्रभु की पूजा अपने उद्धार के लिए अपने को ही करने की है। जब कीसी भी कारण से अपन सारा मंदिर की सार संभाल और प्रत्येक प्रभु की भक्ति नही कर सकते हैं इसलिए ही पूजारी रखा जाता है तो अपनी कमजोरी व मजबुरी के कारण अपने को करने की भक्ति पूजारी द्वारा करवाते हैं

तो उसको पगार देव द्रव्य में से कैसे दिया जाय? नही ही दिया जा सकता हैं। हां यह एक बात हैं कि जहां पर प्रभु की पूजा वहां की वस्ती के अभाव में अगर वहां की वस्ती पूजादि करने की असमर्थ होने के कारण बंध हो जाय वैसी स्थिती होवे तो वहां पर यदि श्रावक वर्ग अपनी शक्ति के अभाव में जैसे देव द्रव्य में से पूजादि करावे वैसे जैनेतर पूजारी को भी देव द्रव्य में से पगार देवे तो दोष नही है।

ज्ञान द्रव्य का उपयोग -

(१) आगम शास्त्रादि धार्मिक पुस्तके, साधु साध्वी सम्बन्धित अध्ययनादि के लीए विविध साहित्यादि पुस्तक लेने में, छपवाने में कागद तथा उसके साधन खरीदने के लीए, जैनेतर लहीआओ को देने में और आगमादि शास्त्र साहित्य के रक्षण में ज्ञान द्रव्य को खर्च सकते है।

(२) साधु साध्वीजी को पढ़ाने वाले जैनेतर पंडीत को पगार में तथा पुरस्कार में दे सकते हैं लेकिन ज्ञान द्रव्य में से श्रावक श्राविका के पगारादि में नही देना।

(३) ज्ञान खाते की रकम में से ज्ञान भंडार बना सकते हैं। ज्ञान भंडार के पुस्तकों का अध्ययनादि करने के लिए साधु-साध्वीजी ही उपयोग कर सकते हैं श्रावक श्राविका को यदि उपयोग करना है तो उसका किराया (नकरा)

देना चाहिए अन्यथा ज्ञान द्रव्य के भक्षण का दोष लगेगा।

(४) ज्ञान द्रव्य से बंधे हुए मकान में ज्ञान भक्ति पठन पाठन पूजादि के कार्य किये जा सकते हैं लेकिन साधु साध्वी श्रावक श्राविका रहेठान संथारा वगेरे कोई भी अंगत कार्य में इस मकान का उपयोग नही कर सकते।

संसार के व्यवहारिक शिक्षण में यह ज्ञान द्रव्य का उपयोग नही कर सकते तथा धार्मिक श्रावक श्राविका की पाठशाला में पाठशाला के मकान में पाठशाला के पगार में तथा पाठशाला के प्रतिक्रमणादि के धार्मिक पुस्तक लाने में भी उसका उपयोग नही हो सकता! पुस्तक बेचने वाले जैन व्यापारी को नही दे सकते। धार्मिक शिक्षण खाता-पाठशाला खाता-यह साधर्मिक श्रावक श्राविका की ज्ञान भक्ति का साधारण खाता गिना जाता है यदि श्रावक श्राविकाओ ने अपना द्रव्य अपने धार्मिक अभ्यास के लिए समर्पित किया होवे तो इसमें से पगार देकर श्रावक पंडीत रख सकते हैं उस पंडीत का लाभ साधु आदि चारों प्रकार का संघ ले सकता है धार्मिक पुस्तके तथा इनाम वगेरे भी इसमें से दे सकते हैं परन्तु ये पैसे व्यवहारिक शिक्षण में किसी भी प्रकार से उपयुक्त नही किये जा सकते।

साधु साध्वी क्षेत्र के द्रव्य का उपयोग :

इस क्षेत्र का द्रव्य साधु साध्वी की वैयावच्च में खर्च कर सकते हैं।

श्रावक श्राविका क्षेत्र के द्रव्य का उपयोग :

श्रावक श्राविका की धर्म भावना बनी रहे इस उद्देश से उनके जीवन निर्वाह के लिए इस क्षेत्र का द्रव्य दे सकते हैं। यह धार्मिक पवित्र द्रव्य है अतः चेरेटी सामान्य जनता याचक-दीन दुःखी अथवा तो दूसरे कोई भी आदमी की दया, अनुकम्पा आदि व्यवहारिक कार्यो में इस द्रव्य का बिलकुल उपयोग नही कर सकते।

साधारण द्रव्य और उसका उपयोग :

सातों क्षेत्र की भक्ति के लिए तथा दूसरे धार्मिक कार्यों के लिए टीपादि से एकत्रित किए हुए द्रव्य को साधारण द्रव्य कहा जाता है इस द्रव्य का उपयोग सात क्षेत्र में से जिस किसी भी क्षेत्र में घाटा होवे तो आवश्यकता के अनुसार उस क्षेत्र में कर सकते हैं। लेकिन व्यवस्थापक अथवा दुसरा कोई भी व्यक्ति अपने स्वयं के उपयोग में नही ले सकते, तथा यह साधारण का द्रव्य धार्मिक-रिलिजियस होने के वजह से दीन दुःखी अथवा कोई भी जैन साधारण सर्व सामान्य लोकोपयोगी व्यवहारिक अथवा जैनेतर धार्मिक कार्यों मे इस द्रव्य का खर्च

नही किया जा सकता।

धारणा पारणा स्वामिवात्सल्य नवकारशी खाता का पौषध वाले के एकासणे-प्रभावना आदि खाता का-और दूसरे भी तप जप तीर्थ यात्रा वगेरे धार्मिक कार्य करने वाले साधर्मिक की भक्ति का द्रव्य होता है यह द्रव्य भी द्रव्य के दाता की भावनानुसार उस उस खाते में उपयुक्त करना चाहिए। बचत होवे तो उस द्रव्य का सात क्षेत्र में जहां जहां जरूरत पड़े वहां व्यय कर सकते हैं परन्तु सार्वजनिक कार्य में उसका व्यय नहीं कर सकते क्योंकि वह द्रव्य धार्मिक द्रव्य है।

आयंबिल खाता - यह खाता आयंबिल करने वाले तपस्वीओं की भक्ति का है! इसलिए इस खाते का द्रव्य आयंबिल तप करने वाले तपस्वीओं की भक्ति में ही खर्च कर सकते हैं यह खाता भी धार्मिक है अतः दूसरे कार्यो में नहीं खर्च सकते आयंबिल भ्वन का उपयोग धार्मिक प्रवृत्ति के अलावा दूसरे कोई भी कार्य में नही हो सके।

अनुकम्पा द्रव्य

कोई भी दिन दुःखी मनुष्य को दुःख मुक्त करने के द्रव्य को अनुकम्पा द्रव्य कहा जाता है। इस द्रव्य को कोई भी दिन दुःखी मनुष्य को प्रत्येक प्रकार की सहाय में दे सकते हैं। यह द्रव्य भी धार्मिक द्रव्य है अतः उसका उपयोग

अनुकम्पा में ही हो सकता है दूसरे कार्यो में नहीं तथा सात क्षेत्र में भी नहीं हो सकता।

जीवदया द्रव्य - निराधार पशु पंखीओं के जीवन का रक्षण के लिए समर्पित किए गए द्रव्य को जीवदया द्रव्य कहा जाता है। उसका उपयोग पांजरापोल परबड़ी वगेरे तमाम जीवदया सम्बन्धी कार्यों में तथा मरते जीवों को बचानें में बुड्ढे लुले लंगड़े और निराधार पशु पक्षियों के रोग दूर करने में तथा उनके जीवन-निर्वाह के लिए खर्च कर सकते है दूसरे कोई भी कार्यो में तथा मनुष्य के उपयोग में यह द्रव्य नहीं ले सकते तथा सात क्षेत्र में भी नहीं ले सकते। यह द्रव्य मात्र जानवरादि जीवों की दया के लिए ही है।

देव द्रव्यादि धर्म द्रव्य का संवर्धन कैसे करना?

देव द्रव्यादि द्रव्य की वृद्धि करनी होवे तो शास्त्र के अनुसार से करनी चाहिये।

विवेक विलास ग्रन्थ में कहा है कि देव द्रव्यादि धर्म द्रव्य किसी को भी ब्याज में उधार देना हो तो सोने चांदी के जेवर तथा जमीन जागीरदारी के ऊपर देने चाहिए। न कि अंग उधार। बिना जेवर जमीन आदि के लिए देव द्रव्यादि धर्म द्रव्य को उधार में देने से द्रव्य डूब जाने की ज्यादातर संभावना रहती है।

द्रव्य सप्ततिका ग्रन्थ में भी यह ही बात का निर्देश किया है- और उसी बात के साथ श्रावकों ने भी देव द्रव्यादि द्रव्य अपने पास ब्याजादि से नहीं रखना चाहिये यह भी कथन किया है - वह इस तरह है :

एवं सति यत्तदवर्जनं तन्निःशुकतादिदोषसंभवपरिहारार्थं ज्ञेयं।
तेनेतरस्य तद्भोगविपाकानभिज्ञस्य निःशुकताद्यसंभवात् वृद्ध्यर्थसमधिकग्रहणकग्रहणपूर्वक सर्मपणे न दोषः। सशुकादौ तु समर्पणव्यवहाराभावात्।

निःशुक्तादि दोष का परिहार करने के लिए श्रावको को अपने पास वृद्धि के लिए देव द्रव्यादि धर्म द्रव्य को ब्याजादि से रखने का वर्जन किया है, अतः देव द्रव्यादि धर्म द्रव्य का भोग करने से कितना बुरा परिणाम आता है ऐसा जिसको ज्ञान नहीं वैसे परधर्मी जैनेतर आदमी को निःशुकतादि होने की संभावना नहीं होती इस कारण उसको देव द्रव्यादि द्रव्य की वृद्धि के लिए अधिक कीमत वाले सोने चांदी वगेरे के जेवर आदि को लेकर देव द्रव्यादि द्रव्य ब्याज में देना कोई दोषपात्र नहीं है। जिसको देव द्रव्यादि द्रव्य का भोग करने में सुग है वैसे जैनेतर आदमी को भी ब्याज में देने का व्यवहार नहीं करना चाहिए।

इस पाठ का तात्पर्य यह है कि -

परधर्मी जैनेतर को यह जानकारी नहीं होती कि देव द्रव्यादि धर्म द्रव्य का भक्षण करने से बहुत पाप लगता है। इस कारण उनको देव द्रव्यादि का भक्षण करने में निःशुक्ता नहीं आती। अतः उसको ज्यादा किम्मत के दागीने वगेरे के उपर देव द्रव्यादि की रकम ब्याज में देने में कोई दोष नहीं। लेकिन श्रावक को तो देव द्रव्यादि का भक्षण करने में बहुत ही बड़ा पाप लगता है'' यह ज्ञान है अतः वह देव द्रव्यादि का भक्षण करे तो उसको निशुःकता आये बिना नहीं रहती इसलिए श्रावकोने अपने पास देव द्रव्यादि व्याजादि से नहीं रखना चाहिए। उसी तरह सुग वाले जैनेतर को भी व्याजादि कीम्मती दागीने लेकर भी देव द्रव्यादि द्रव्य उधार नहीं देना चाहिए। इस शास्त्र पाठ से यह निश्चित होता है कि कोई भी वहीवटदार श्रावक होवे या दुसरा कोई भी श्रावक होवे वह देव द्रव्यादि धर्म द्रव्य कीम्मती दागीने वगेरे लेकर या बिना लिए ब्याज से नही रख सकता, यदि रखे और उसके उपर स्वयं कमाए तो देव द्रव्यादि के भक्षण करने के दोष का भागीदार बनता है।

वर्तमान काल की परिस्थिति भारे विषम है जो अतीव सोचनीय है। अंजन शला के प्रतिष्ठा महोत्सवादि के शुभ प्रसंगो में जगह-जगह पर लाखों रुपैये के चढ़ावे होते हैं।

जिस आचार्य भगवन्तादि की निश्रा में लाखों के चढ़ावे होते हैं उनमें से कीतनेक गौरव लेते हैं कि हमेरी निश्रा में बहुत बड़ी आवक हुई। गांव के लोग भी आनन्द विभोर बन जाते है। दूसरे गाँवों के लोग भी लाखों के चढ़ावे की विपुल प्रमाण में आमदानी को सुनकर खुब खुब अनुमोदना करते हैं। लेकिन लाखों के चढ़ावे बोलने वाले वह अपने चढ़ावे की रकम तुरन्त भरपाई नहीं करते। उस रकम पर संघ को थोड़ा ब्याज देकर स्वयं ज्यादा कमाते हैं और अपना व्यापार धन्दा पेढ़ीयों तक चलाते रहते हैं और अन्त में कभी ऐसा भी होता है कि मूल मूड़ी डुब जाती है। देव द्रव्यादि द्रव्य को अपने पास रखकर उसके उपर कमाणी करना श्रावक के लिए देव द्रव्यादि धर्म द्रव्य के भक्षण का दोष लगाने बराबर है। कितनेक जगह वहीवटदार ट्रस्टी लोक भी श्रीमंत श्रावकों के वहां देव द्रव्यादि धर्म द्रव्य ब्याज में रखते हैं और वे श्रीमंत श्रावक उसके उपर व्यापार करके कमाते हैं इससे ये भी देव द्रव्यादि धर्म द्रव्य के भक्षण के दोष के भागी बनते हैं इसलिए वहीवटदार ट्रस्टी वर्ग ने किसी भी श्रावक को ब्याजादि में देव द्रव्यादि धर्म द्रव्य नहीं देना चाहिए। कितनेक ग्रन्थ में श्रावक को देव द्रव्यादि उधार देने की साफ मना की है हां कहीं होवे ऐसा कोई [illegible] में नहीं आता। श्रावक को उधार देने में अनेक आपत्ति के [illegible] यह भी एक आपत्ति है कि एक श्रावक लाज शरम से [illegible] लेने वाले श्रावक के

पास उधराणी न कर सके तो वह द्रव्य डुब भी जावे तथा वहीवट करने वाले ट्रस्टीओं ने भी अपने नाम से या अन्य के नाम से उधार लेकर अपने पास कमाणी करने के लिए नहीं रखने चाहिए। देव द्रव्यादि द्रव्य से व्यापारधन्धादि करके श्रावक अपने लिए कमाणी करे तो वह श्रावक दोष पात्र है इसलिए पुराणके अंन्दर भी कहा है कि -

देवद्रव्येन या वृद्धि गुरुद्रव्येन यद्धनं
तद्धनं कुलनाशाय मृतोऽपि नरकं व्रजेत।

जिसको देव द्रव्य से जो समृद्धि मिले और गुरू द्रव्य से जो धनप्राप्त हो वह धन-समृद्धि उसके कुल का उच्छेद करने वाली बनती है और मरने के बाद वह आदमी नरक में जाता है तात्पर्य यह है कि देव द्रव्य की मुडी पर व्यापार करके जो आदमी समृद्ध बनता है और गुरू द्रव्य से व्यापार कर धन कमाता है उस आदमी को इस भव में इन पाप का उत्कृष्ट फल (कुल का उच्छेद रुपसे प्राप्त होना है और पारलोकिक उत्कृष्ट फल) नरक मिलती है, इसलिए किसी भी श्रावक ने व्यापार धन्धा करने के लिए देव द्रव्यादि उधार लेना वह पाप में पड़ने जैसा है। देव द्रव्यादि धर्म द्रव्य की वृद्धि करना है तो शास्त्रानुसार अधिक कीम्मती जेवर जागीर जमीनादि के उपर ब्याजादि से जैनेतर परधर्मी को उधार रूप से ब्याज में दे सकते हैं।

वास्तव में आज के काल में देव द्रव्यादि द्रव्य की वृद्धि करके बढ़ाए जाना और संग्रह करना ये किसी भी तरह से ठीक नहीं है क्योंकि वर्तमान की सरकार और कायदे ऐसे विचित्र कोटी के है कि मिलकत कब हाथ में से चली जावे यह कुछ भी नहीं कह सकते। अतः जहां जहां मंदिरों के जीर्णोद्धार वगेरे में जरूरत लगे वहां वहां देव द्रव्य का सद्व्यय कर लेना चाहिए। अपने गांव में मंदिर के अन्दर उपयोग करने की आवश्यकता लगे तो उसमें देव द्रव्य का पैसा लगा देना जरूरी है। अपने गांव के मंदिर में आवश्यकता न होवे तो अन्य गांवों के मंदिर तथा तीर्थ स्थलों के मंदिर के जीर्णोद्धार या नूतन निर्माण में देने की उदारता बतानी चाहिए।

लेकिन आज तो ज्यादातर ट्रस्टी वर्ग इतनी क्षुद्रवृत्ति के है कि वे न तो देव द्रव्य का उपयोग अपने गांव के मंदिर के जरूरी काम में करते और न तो अन्य गांवों के मंदिर या तीर्थ स्थलों में जीर्णोद्धारादि के कार्य में उपयोग करते। केवल देव द्रव्य का संग्रह कर उसके उपर अपना अधिकार जमाए रखते हैं इस तरह करने से ट्रस्टी वर्ग घोर पाप का बन्ध करते हैं ज्ञानी भगवन्त कहते हैं कि उनके जनम जनम बिगड़ जाएंगे। नरकादि दुर्गति में असह्य यातनाए भोगनी पड़ेगी। धन सम्पत्ति रगड़े झगड़े का मूल है। ट्रस्ट में धन सम्पत्ति ज्यादा प्रमाण में जमा हो जाती है तब ट्रस्टी वर्ग परस्पर झगड़ते हैं अथवा संग्रहित देव द्रव्य को मंदिरादि में

न लगाकर उपाश्रय धर्मशाला भोजनशाला सस्ते भाड़े की चार्ल
बिल्डिंग बनवाने आदि कार्य में लगा देते हैं जो अत्यंत ह
शास्त्र विरुद्ध है और गाढ़ पाप बन्ध का कारण है।

देव द्रव्यादि को यदि वृद्धि करनी है तो जिनाज्ञा र
खिलाफ होकर मत करो।

द्रव्य सप्ततिका ग्रन्थ में कहा है कि -

जिणवरआणारहियं वद्धारंता वि केवि जिणदव्वम् ।
बुड्डुंति भवसमुद्दे मुढा मोहेण अन्नाणी ॥

जिनेश्वर भगवन्त की आज्ञा को छोड़कर जो देवादि
द्रव्य की वृद्धि करता है वह मोह से मूढ है अज्ञानी है औ
वह संसार सागर में बुड़ता है।

शास्त्र में १५ कर्मादान के व्यापार धन्धे बताये हैं जैरे
अंगार कर्म-लकड़ों को जला कर कोलसे बनाने का धन्धा।

रस वाणिज्य-तेल घी गुड़ादि के व्यापार करना।

दन्त वाणिज्य-हाथी आदि पंचेन्द्रिय प्राणियों को मार
कर उनके दांतादि को बेचने का धन्धा करना। खेती वाड़ी
करना इत्यादि।

कर्मादान के धन्धे में एकेन्द्रिय से लगाकर पंचेन्द्रिय
तक के प्राणियों की घोर हिंसादि का आरंभ समारंभ होता है

अतः ये व्यापार धन्धे महापाप के कारण बनते हैं ऐसे धन्धे करने वाले को देव द्रव्यादि की वृद्धि करने के लिए ब्याजादि से देव द्रव्यादि द्रव्य देना ये जिनेश्वर भगवन्त की आज्ञा के विरुद्ध है। इस कारण द्रव्य सप्ततिका ग्रन्थ की टीका में कहा है कि

कर्मादानादिकुव्यापारवर्ज सद्व्यवहारादिविधिनैव तद्वृद्धिः कार्या।

कर्मादानादि के कुव्यापार को छोड़ सद्व्यवहारादि की विधि से ही देव द्रव्यादि की वृद्धि करनी चाहिए।

तात्पर्य यह है कि न तो अपने कर्मादानादि के व्यापार में देव द्रव्यादि लगाना या तो न दुसरे कर्मादानादि के व्यापार करनेवाले को ब्याजादि से देना ऐसा शास्त्र-कार का कहना है शास्त्र विरुद्ध यदि देव द्रव्यादि की वृद्धि करने का लोभ रखोगे तो संसार बढ़ जायेगा, अनन्तकाल तक चोरासी के चक्कर में घुमना पड़ेगा। कई नरकादि दुर्गतियों में भयंकर दुःख भोगने पड़ेंगे।

द्रव्य सप्तत्ति ग्रन्थ में नीचे के श्लोक में पालन करने योग्य तीन बातें बताई हैं (१) देव द्रव्यादि का स्वयं भक्षण न करना, (२) भक्षण करने वाले दुसरों की उपेक्षा नहीं करना, (३) देव द्रव्यादि का दुर्वहीवट नहीं करना।

भक्खेइ जो उविक्खेइ जिणदव्वं तु सावओ ।

पन्नाहीणो भवे जोउ लिप्पइ पावकम्मणा।। ।।

देव द्रव्यादि का जो स्वयं भक्षण करता है। देव द्रव्यादि का भक्षण करने वाले की उपेक्षा करता है तथा मंदमति से दुर्वहीवट करता है वह पाप कर्म से लेपाता है।

देव द्रव्यादि का भक्षण करना शास्त्र में महा पापबन्ध का कारण बताया है।

चेइयदव्वं साहारणं च, जो दुहइ मोहियमइओ ।
धम्मं च सो न याणेइ अहवा बद्धाउ उ नरए ।।

जो मोहग्रस्त मतिवाला श्रावक देव द्रव्य ज्ञान द्रव्य साधारण द्रव्य का स्वयं उपभोग करता है। चोर लेता है। वह धर्म को बिल्कुल नहीं जानता अथवा तो उसने नरक का आयुष्य बांध लिया है।

आयाणं जो भंजइ पडिवन्नधणं न देइ देवस्स ।
गरहंतं चोविक्खइ सो विहु परिभमइ संसारे ।।

देव द्रव्य से बनाए मकान में या दुकान में भाड़े से भी रहना उचित नहीं है लेकिन मंदिरादि के निभाव के लिये मकान दुकान वगेरे किसी आदमी की तरफ से भेंट आये होवे उसमें भाड़े से श्रावक वगेरे रहे और भाड़ा कम देवे, न देवे कोई देता हो उसको मना करे।

पजुसणादि पर्वो के प्रसंग में चढ़ावे में बोली रकम न देवे और देव द्रव्यादि कोई खा जाता होवे तो उसकी उपेक्षा करे तो वह श्रांवक या वहीवटदार संसार में दीर्घकाल तक भटकनेवाला होता है।

देव द्रव्यादि का दुसरों द्वारा भक्षणादि से होते विनाश की उपेक्षा करना वह दीर्घ संसार में भ्रमण का कारण है। कहा है कि -

चेइयदव्वविणासे तद्दव्वविणासणे दुविहभेए ।
साहु उविक्खमाणो-अणंतसंसारिओ होई ॥

देव द्रव्य के हीरे माणेक सोना चांदी रुपैये वगेरे का भक्षणादि करने से विनाश करें तथा देव द्रव्य के धन से खरीदे नये तथा मंदिर के पुराने लकड़े पत्थर ईंट वगेरे का कोई विनाश करें उसमें उपेक्षा करने वाले श्रावक की क्या बात करना लेकिन सर्व सावद्य पापों से विरत साधु भी उदासीन बन उपदेशादि देकर उस विनाश का निवारण न करे तो वह साधु भी अनंत संसारी होता है। देव द्रव्यादि का विनाश को देखकर साधु ने जरा भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

रिस्तेदार या मित्रादि का कोई भी सम्बन्ध के टूटने की परवा किए बिना जो कोई भी देव द्रव्यादि का भक्षणादि करनेद्वारा विनाश करता हो तो उसकी उपेक्षा किसी भी श्रावक

को नहीं करनी चाहिए। कितने श्रावक सम्बन्ध के नाते देव द्रव्य का दुसरों से होते विनाश में उपेक्षा करते है। लेकिन यह उपेक्षा साधु की तरह उनके भी अनन्त संसार भटकने में कारण बनती हैं।

देव द्रव्यादि का दुर्वहीवट नहीं करना चाहिये : -

मंदिर उपाश्रयादि के जीर्णोद्धार या नव-निर्माण के कार्यों में देव द्रव्यादि के पैसे खर्चने में कर कसर करो यह बात अलग हैं लेकिन कंजुसी नहीं करनी चाहिए कार्य में कंजुसी करने से कार्य बिगड़ जाते हैं उससे देव द्रव्यादि द्रव्य का दुगुना खर्च करने में उतरना, पड़ता है उसी तरह मंदिरादि के लिए कोई चीज वस्तु लाने में भी कंजुसी नहीं करनी चाहिए।

जिस तरह से कंजुसी नहीं करनी चाहिए उसी तरह ज्यादा तौर पर उदारता बता के देव द्रव्य का अधिक प्रमाण में खर्च न होवे उसकी भी कालजी रखना जरुरी है।

जो ट्रस्टी वर्ग ज्यादा प्रमाण में उदारता बताकर मंदिरादि के कार्य में या मंदिरादि की चीज वस्तु खरीदने में देव द्रव्यादि का बेफाम खर्च करते हैं वे खरेखर दुर्वहीवट करने वाले हैं।

आज जगह जगह पर यह चलता है कि संस्था के कार्यों में पैसे खर्चने में बहुत ही उदारता बताते है काम करने

वाले कारीगर मजदुरादि को पगार ज्यादा दे देते है और चीज वस्तु खरीदने में ज्यादा भाव दे देते है इस तरह करना दुर्वहीवट है। दुर्वहीवट किस प्रकार से होता है इस बाबत में द्रव्य सप्तति ग्रन्थ की टीका में 'पण्णाहीणो भवे जो' यह पद की व्याख्या करते कहा है कि –

प्रज्ञाहीनत्वमंगोद्धारादिना देवद्रव्यादिदानं यद्वा
मंदमतितया स्वल्पेन बहुना वा धनेन
कार्यसिद्धयवेदकत्वात्
यथाकथंचित् द्रव्यव्ययकारित्वं कुटलेख्यकृतत्वं च।

वहीवट करने में बुद्धिहीनता यह है जो अधिक किम्मति जेवर जमीन जागीर आदि लिए बीना केवळ अंग उधार रूप से देव द्रव्यादि का धन व्याजादि में देना अथवा थोड़े धन से कार्य सिद्ध होगी या बहुत धन से उसका विचार किये बिना ज्यु मरजी में आवे त्युं देव द्रव्यादि का व्यय करना और झूठे लेख करना।

मंदिरादि कार्यों मे जो कारीगर मजदुर वगेरे काम करने के लिए रखाना हो तो उनका पगार मजुरी वगेरे लोक अपनी बील्डींग वगेरे बानाने में जो देते है उस मुताबीक देने का नक्की करना चाहिए और मंदिरादि के लिए कोई भी चीज खरीदनी है. तो वह बाजार भाव से खरीदनी चाहिए। विशेष प्रकार से विशालता रख कर मंदिरादि की संस्था के द्रव्य का

दुर्व्यय करना वह स्व और पर (कारीगरादि) के लिए देव द्रव्यादि भक्षणादि के पाप बन्ध में कारण बनता है। अपने धन से मंदिरादि के कार्य करने में उदारता करो वह बात अलग है लेकिन धर्म संस्था के द्रव्य से कार्य करना है तो किफायत भाव से कार्य करके कर कसर करनी आवश्यक है।

प्रत्येक श्रावक या ट्रस्टी वर्ग ने यह ध्यान रखना चाहिए कि अपने से थोड़ा सा भी देव द्रव्यादिका दुर्व्यय भक्षणादि करने द्वारा विनास न होवे।

देव द्रव्य के विनाश का फल बहोत भयंकर बताया है।

देवाइदव्वणासे, दंसणमोहं च बंधए मूढो।

देवद्रंव्यदिका विनाश करने वाला मूढ आत्मा मिथ्यात्व मोहनीय रुप दर्शन मोहनीय कर्म का बन्ध करता है और साथ में दुसरी भी भयंकर पाप प्रकृतिका बन्ध करता है।

चेइअदव्वविणासे इसिधाए पवयणस्स उड्डाहे संजइ-
चउत्थभंगे मूलग्गी बोहिलाभस्स।।

चैत्यद्रव्य-देव द्रव्यका विनाश करना मुनि की हत्या करनी जैन शासन की अवहेलना - निंदा करवाना साध्वी का चर्तुथ व्रत - ब्रह्मचर्य व्रत का भंग करना ये सब पाप बोधिलाभ के वृक्ष के मूल को जलाकर भस्मीभूत करने के लिए अग्नि

समान है।

देवद्रव्य् का भक्षणादि करने के पाप को साधु की हत्या साध्वी के साथ अनाचार करना प्रवचन - जैन शासन की अपभ्राजना करवाना ये पापों के बरोबरी का बताया है। जैसे ये पापकरने से आदमी अपने बोधी (धर्म) वृक्ष के मूल में आग लगाकर भस्मसात् करता है उसी तरह देव द्रव्य का विनाश करने वाला भी अपने धर्म वृक्ष के मूल में आग चापने का ही काम करता है। इसको जनम - जनम में धर्म की प्राप्ति नहीं होगी।

देव द्रव्यादि धर्म का व्निनाश होता होवे तब सारे साधु और श्रावक संघ ने देव द्रव्यादि क्रे विनाश को रोकने के लिए जोरदार प्रयत्न करने चाहिये। उपेक्षा करना अनंत भवभ्रमण का कारण है। देव द्रव्य का विनाश यह एक भयंकर आग है अनजान से भी आग को छु जाने से वह जलाए बिना नहीं रहती उसी तरह देव द्रव्यादि का भक्षण अनजान से भी हो जावे तो वह आत्मा के लिए नुकसान किये बिना नहीं रहता है।

देव द्रव्य का भक्षण करने वाला इस जनम में दरिद्री दु:खी हो जाता है अन्त में मरते वक्त उसको इस महापाप से चित्त उपहत हो जाने से समाधि नहीं मिलती। मृत्यू के बाद वह नरक में जाता है और नरकादि दुर्गति की परंपरा

चलती रहती है इस बात का सूचन करने वाला यह शास्त्र पाठ है—

स च देवद्रव्यादिभक्षको महापापोपहतचेता
मृतोऽपि नरकं सानुबन्धदुर्गतिं व्रजेत्।

और भी कहा है कि =

अग्निदग्धा:पादपा जलसेकादिना प्ररोहंति पल्लवयंति।
परं देवद्रव्यादिविनाशोग्रपापपावकदग्धो नर: समूलदग्ध-
द्रुमवन् न पल्लवयति प्राय: सदैव दु:खभावत्वेन
पुनर्नवो
न भवति।

दिगम्बरों के ग्रन्थ में भी कहा है कि –

वरं दावानले पात: क्षुधया वा मृतिर्वरं।
मूर्ध्नि वा पतितं वज्रं न तु देवस्वभक्षणं। ।।
वरं हालाहलादीनां भक्षणं क्षणदु:खदं।
निर्माल्यभक्षणं चैव दु:खदं जन्मजन्मनि।।

दावानल में पड़ना अच्छा भूखे मरना अच्छा माथे में वज्र (शस्त्र) के घा पड़े तो भी अच्छा लेकिन देव द्रव्य का भक्षण करना कोई रीति से अच्छा नहीं।

हालाहल विष का भक्षण अच्छा है परन्तु देव द्रव्य का भक्षण करना अत्यन्त अनुचित है क्योंकि विष थोडे समय के लिए दु:खदायी होता है लेकिन देवद्रव्य का भक्षण तो जनम जनम में दु:खदायी होता है।

देव द्रव्य के नाश का इतना भयंकर पाप है कि उस पाप को निवारण करने की जबाबदारी साधु आदि सकल संघ के ऊपर शास्त्रकारों ने रखी है।

महानीशथ सूत्र में तो ऐसा कहा है कि – ''किसीने देव द्रव्य का भक्षण किया होवे और अनेक उपायों से समझाया जावे फिर भी वह शक्ति सम्पन्न होने पर भी देव द्रव्य संघ में भरपाइ न करें तो साधु जहां से राजा का आना जाना होवे ऐसे स्थान पर धूपादि में आतापना ले। राजा आतापना लेते साधु को **देख** प्रसन्न हों जावे और पूछे महाराज ऐसे गाढे धूप में आप क्युं तपते हो आपको क्या चाहिए तब साधु कहे हमको कुच्छ भी नहीं चाहिए लेकिन आपके नगर में अमुक आदमी देव द्रव्य खा गया है। बहोत से उपायों से समझाने पर भी नहीं देता है। आप राज हो। आप उसके पास से मंदिर के पैसे दिलादो जिससे मंदिर को नुकसान न होवे वह आदमी भी पाप में न डूबे।''

देवद्रव्य का ज़िसने भक्षण किया होवे अथवा जिसके पास देव द्रव्य का लेना बाकी होवे तो किसी भी उपाय से

वसूल कर लेना चाहिए जिसको देव द्रव्य देवा देनें के शक्ति न होवे तो संघ ने अथवा कोई पुण्यवन्त श्रीमंत श्रावक ने अपने रुपये भरकर खाता चुकता करना चाहिए। शक्ति सम्पन्न भी आदमी देव द्रव्य का देवा बददानत से भरपाई न करता होवे तो उसके घर का पानी भी श्रावक ने नहीं पीना चाहिए। कोई संजोग वशात् उसके वहां भोजन लेना पडे तो भोजन की जितनी किंमत होवे उस मुताबिक रुपये मंदिरजी के भण्डार में डाल देवे। लेकिन मुफत नहीं जीमना इस तरह कथन कई शास्त्र में किया है।

कितनेक ठीकाने ट्रस्टी वगैरे स्वयं ही संघादि को बिना पूछे बड़ी बड़ी देवद्रव्यादि की रकम अपने उपयोग में लेने के लिए संस्था में से उठाते है लेकिन यह अत्यन्त गेरवाजबी है क्योंकि श्राद्धजीत कल्प में कहा है कि देवद्रव्यादि की व्यवस्था करने वाले को यदि एक रुपये का केवल परचुरण अपने पास रही देवद्रव्यादि की सीलक में से लेना होवे तो दो आदमी को साक्षी के बिना नहीं लेना चाहिए। इस बात से यह विचार करना चाहिए कि यदि रुपया डालकर देवद्रव्य से परचुरण लेना अकेले आदमी को सत्ता नहीं है तो फिर बिना किसी की इजाजत से बड़ी बड़ी रकम देवद्रव्यादि को अपने उपयोग के लिए लेना कितना अनुचित है।

एक कोथली से व्यवस्था दोषित है।

देव द्रव्यादि धर्म द्रव्य की व्यवस्था एक कोथली से करना दोषपात्र होने के वजह से अत्यन्त अनुचित है।

गांव-गांव में यह एक कोथली की व्यवस्था है देव द्रव्य के रुपये आवे तो उसी कोथली में डाले, ज्ञान द्रव्य के रुपये आये तो उसी कोथली में तथा साधारणादि के रुपये आये तो भी उसी कोथली में डालते है जब मंदिरादि के कोई कार्य में खर्चने होते है तब उसी कोथली में से खर्च करते है लेकिन जब उस कोथली में केवल देव द्रव्य के ही रुपये पड़े है और चौपड़े में ज्ञान साधारण खाते का एस पैसा भी नहीं है उस वख्त आगम ग्रन्थ लिखवाने का या छपवाने का कार्य उपस्थित हुआ अथवा साधु साध्वीजी महाराज को पढ़ाने वाले पंडितजी को पगार चुकाने का प्रसंग उपस्थित हुआ तब जिस कोथली में केवल देव द्रव्य का ही धन है उसमें से रुपये लेकर खर्च करते है अथवा साधु आदि का वैयावच्चादि के प्रसंग में भी उसमें से ही खर्च करते है उससे जब तक कोथली में ज्ञान साधारण द्रव्य उधराणी में से न आवे वहा तक देव द्रव्य का भोग हुआ अत: एक कोथली पाप में पड़ने का उपाय है। वास्तव में देव द्रव्य की ज्ञान द्रव्य की तथा साधारण द्रव्य वगेरे सबकी कोथली अलग अलग रखनी देव द्रव्य आदि के उपभोग से बचने के लिये बहुत ही जरुरी है

मंदिर का कार्य आवे तो देव द्रव्य की कोथली में से धन व्यय करना चाहिए। ज्ञान का कार्य आवे तो ज्ञान द्रव्य की कोथली में से तथा साधारण के कार्य उपस्थित होवे तो साधारण की कोथली से धन व्यय करना चाहिये लेकिन ज्ञान साधारण खाते की रकम न होवे तो देव द्रव्य की कोथली में से लेकर ज्ञानादि के कार्य में देव, द्रव्य का व्यय नहीं कर सकते। देव द्रव्य का व्यय करने का समय आवे तब वे ज्ञानादि कार्य बन्ध रखाना चाहिये। यद्यपि देव द्रव्य की कोथली होवे और मंदिर का कोई कार्य आवे तो ज्ञान द्रव्यादिका उपयोग हो सक्ता हैं क्योंकि उपले खाते के कार्य में निचले खाते की सम्पत्ति का व्यय करने में शास्त्र का कोई बाध नही है अत: देव द्रव्यादि सब द्रव्य की एक कोथली ट्रस्टीओं के लिए कार्य करने में सुविधा रूप होने पर भी देव द्रव्यादि के उपभोग के पाप के कारण भूत है। इस हेतु सब द्रव्य की एक कोथली रखना और सर्व कार्यों में उसमें से द्रव्य खर्चना तद्दन गलत है।

भगवान की भक्ति के प्रसंग में आये नैवेद्यादि की क्या व्यवस्था :-

किसी भी जगह पर जिनेश्वर देव की भक्ति में आये नैवेद्यफलादि को जैनेतरों में बेचकर उससे पैसे उपजाना चाहिए और वे पैसे देव द्रव्य में जमा करने चाहिए। वर्तमान में

पूजारी वगेरे को देने की प्रवृत्ति चल रही है वह शास्त्र से पूरी खिलाफ है।

श्राद्ध विधि ग्रन्थ में आचार्य भगवन्त श्री रत्नशेखर सूरीश्वरजी फरमाते है कि :-

देवगृहागतं नैवेद्याक्षतादि स्ववस्तुवत् सम्यग् रक्षणीयं सम्यग् मूल्यादियुक्त्या च विक्रेयं ॥

मंदिर में प्रभुभक्ति के लिए रखे गये नैवेद्य चांवल फलादि वस्तुका अपनी वस्तु की माफक सम्यग् रीत से रक्षण करना चाहिए और अच्छी तरह से उसको बेच देना चाहियें तथा बेचाने से आये पैसे प्रभु भक्ति निमित्त नैवेद्यादि रखा होने से देव द्रव्य में ही डाले जावें।

गृहहट्टादि च देवज्ञानसत्कं भाटकेनाऽपि श्राद्धेन व्यापार्य:, नि:शकङ्कताद्यापत्ते:॥

इस श्राद्ध विधि ग्रन्थ में ग्रन्थकार यह कथन करते है कि देव द्रव्यादिका भक्षण करना बड़ा पाप है उसी देव द्रव्य के भक्षण प्रति सुग श्रावकों को होती हैं ये सुग चली न जावे इत्यादि अनेक हेतु से देव द्रव्य के या ज्ञान द्रव्य के मकान में भाडे से भी रहना श्रावक के लिए उचित नहीं है।

साधारण सम्बन्धि तु संघानुमत्या यदि व्यापार्यते तदाऽपि लोकव्यवहाररीत्या भाटकमप्यते न तुन्यूनम् ॥

साधारण के दुकान मकानादि में संघ की अनुमति से रह सकते है फीर भी उसका किराया लोग व्यवहार में जो होवे उस मुताबिक देना चाहिये कम देवे तो न चले। कम भाड़ा देने वाला पाप का भागी बनता है।

गृहचैत्यनैवेद्यादि तु देवगृहे मोच्यम्

श्राद्ध विधि ग्रन्थकार कहते है कि घर मंदिर में नैवेद्य चांवल सोपारी नारियल वगेरे जों कुछ आवे वह संघ के मन्दिर में दे देना चाहिए।

कितनेक जगह पर घर मन्दिर में प्रभुभक्ति निमित से इकठ्ठे हुए देव द्रव्य का व्यय घर मन्दिर के जिर्णोद्धार में रंगरोगानादि करने में तथा पूजा के लिए केसर सुखडादि की व्यवस्था करने में करते है वह किसी रीत से युक्त नहीं है। व्यक्ति का मन्दिर कहलावे और उसका निभावादि देव द्रव्य में से करे यह कैसे ठिक है। व्यक्ति के मन्दिर में व्यक्ति ने स्वयं ही अपने धन से निभावादि की व्यवस्था करनी चाहिये। अपने मन्दिर में आयी सब आवक संघ के मन्दिर में देनी यह ही श्राद्ध विधि आदि शास्त्र का विधान है।

ट्रस्टियों के कर्तव्य

१) प्रत्येक ट्रस्टी ने आपमति, बहुमति और सर्वानुमति के आग्रही नहीं बनना चाहिए किन्तु शास्त्रमति के ही आग्रही रहना जरुरी है। मन्दिरादि के तथा वहीवटादि के कार्य शास्त्र के आधार से श्री अरिहन्त परमात्मा की आज्ञा अनुसार करने के लिए कालजी रखनी चाहिये।

२) अपने बोले चढ़ावे की या स्वयं ने टीपादि में लिखाकर देने की निश्चित की हुई देवद्रव्यादि की रकम शीघ्रतया संघ की पेढ़ी में भरपाई करनी चाहिए और लोगों में भी जो देवद्रव्यादि की रकम पड़ी होवे तो उसकी स्वयं या मुनीम के द्वारा उघराणी करके वसूल करनी चाहिए।

हर हमेशा मन्दिर में देवाधिदेव अरिहन्त परमात्मा के दर्शन पूजन करने चाहिए और मन्दिर की सार-संभाल रख के होती हुई आशातनाओं को दूर करने, करवाने का प्रयास करना चाहिए। इसी तरह उपाश्रयादि धर्मस्थानों मे भी रोज जाना चाहिये और उसकी साफ-सफाई वगेरा करवाने का ध्यान रखना चाहिये। उपाश्रय में गुरूमहाराज विराजमान होवे तो प्रतिदिन उनको वन्दन करने जाना चाहिये तथा उनका प्रवचन सुनना चाहिये।

उनके पास स्वयं जिस रीत से वहीवट करते हो उसकी

जानकारी देनी चहिये उसमें जो भुलचूक बतावे उसका सुधारा करना चाहिये। वहिवट करने की विधि के बताने वाले शास्त्र अवसर पर सुनने चाहिये।

प्रत्येक ट्रस्टी का फर्ज है कि ट्रस्टी बनने पर मन्दिर में दर्शन पूजन करने वाले की संख्या में वृद्धि होवे तथा उपाश्रय में सामायिकादि की आराधना करने वाले की संख्या बढ़े और गुरूमहाराज के व्याख्यानादि में ज्यादा लोग उपस्थित होवे ऐसे प्रयत्न करते रहना चाहिये।

जैन शासन के प्रभावना के महोत्सवादि कार्यों मे प्रत्येक ट्रस्टी ने सक्रिय रूप से भाग लेना चाहिये।

आजकल कई जगह पर ट्रस्टी वर्ग ट्रस्टी बनने के बाद ऐसे निष्क्रिय बन जाते हैं कि महोत्सवादि शासन प्रभावना के प्रसंगो की बात तो बाजू में रखो लेकिन उनकी आवश्यक कार्यो के लिये ट्रस्टियों की बुलाई मीटिंग में भी उपस्थिती नहीं रहती। कोई भी कार्य में भाग नहीं लेते। यह अत्यन्त ही अनुचित है संघ के प्रसंगोपस्थित कार्यों में भाग देकर भोग देने की वृत्ति न होवे तो ऐसे आदमी ने ट्रस्टी पद पर आरूढ ही नहीं होना चाहिये।

प्रत्येक ट्रस्टी ने प्रत्येक शासन के कार्य में जिनागम-शास्त्र का अनुसरण करके संप को जारी रखना चाहिये। और जैन संघ में विखवाद खडे न हो उसकी कालजी रखनी चाहिए।

कोई संघ में विखवाद अपने स्वार्थीय कारणों के वश होकर खड़ा करे तो उसको सप्रेम समझाने के लिए प्रयत्न करना चाहिये।

मन्दिर के पूजारी आदि से तथा साफ-सफाई आदि के लिए रखे उपाश्रयादि के आदमी से अपना कोई भी कार्य नहीं करवाना चाहिये। अपना काम करवाना होवे तो उसको अपनी ओर से पैसे देकर ही करवाना उचित है अन्यथा देवद्रव्यादि के भक्षण का दोष लगेगा। और यह कार्य भी पूजारी आदि के द्वारा इस ढंग से तो नहीं ही करवाना चाहिये कि जिससे मन्दिर के कार्यों में; प्रभुभक्ति में व्याक्षेप पडे; व्याघात होवे।

जिनमन्दिरादि के वहीवट करने वाले ट्रस्टीगण के दिमाग में यह बात निश्चित रूप से होनी चाहिए कि ट्रस्टी पद सत्ता भोगने का पद नहीं है लेकिन जिनमन्दिरादि संस्था के सेवक बनकर कार्य करने का पद है। आज कई जगह ट्रस्टी लोगों ने ट्रस्टी पद को मान-सन्मान सत्ता और प्रतिष्ठा का पद बना दिया है अतः ये लोग जिनमन्दिरादि की सार-संभाल तथा देवद्रव्यादि की व्यवस्था सही ढंग से नहीं करते। जब मान-सन्मानादि में बाधा खड़ी होने का प्रसंग उपस्थित होता है तब वे ट्रस्टी मंडल में पक्षापक्षी का वातावरण पैदा करके रगडे झगडे खडे कर देते हैं। अन्त में जाकर ये रगडे झगडे संघ के संप को तोड़ के रहते है। उसके कारण कई लोग धर्म विमुख बन

जाते हैं। ऐसे ट्रस्टी वर्ग में अरिहन्त परमात्मा तथा उनके शासन प्रति श्रद्धा की कमी है। श्रद्धा विहीन पैसेदार जब ट्रस्टी पद पर अरूढ होते तब उनका अभिमान आसमान तक पहुँच जाता है वे न तो जिनाज्ञा मुताबिक वहीवटी कार्य करते और न तो उसमें गीतार्थ गुरू भगवन्तों की राह लेते। ऐसे ट्रस्टी वर्ग देवद्रव्यादि धर्मद्रव्य का अयोग्य स्थानों मे लगाकर दुरूपयोग करके भयंकर पापों का बंध कर दुर्गति के अधिकारी बनते है अत: हरेक ट्रस्टी वर्ग महानुभावों को सूचन किया जाता है कि वे ट्रस्टी पद को मानसन्मानादि का पद न बनाकर सेवा का पद बनावे और श्री अरिहंत परमात्मा की आज्ञा को निगाह में रखकर समय समय पर आज्ञा का पालन करके जिनमन्दिरादि धर्म स्थानों का तथा देवद्रव्यादि धर्मद्रव्य का वहीवटी कार्य करे, जा कि अपनी आत्मा संसार सागर में डूबे नहीं और दुरन्त दुखदायी दुर्गतियों के गहरे खड्डे में गिरे नहीं।

जैन शासन में सारे वहीवटदार लोग सही तौर पर वहीवटी कार्य करके उत्तम कोटि का पुण्य लाभ उठावे इस हेतू हमारा यह पुस्तक प्रकाशन कार्य है और यह पुस्तक एक ध्यान से पुन: पुन: बाँचकर जिनाज्ञा मुताबिक समस्य ट्रस्टी वर्ग वहीवटी कार्य सही ढंग से करे यही हमारी शुभ अभिलाषा है।

देव द्रव्यादि की बोलि बोलने वाले के कर्तव्य

प्रत्येक महानुभावो का कर्तव्य है कि महोत्सवादि के प्रसंग में प्रथम पूजा वगेरे करने की तथा पर्यूषण में स्वप्नाजी झुलाने इत्यादि की बोली बोली जाती है। उसमें रुपये आदि से जो महानुभाव चढ़ावा लेते है और प्रथम पूजादि का लाभ प्राप्त करते है उनको प्रथम पूजादि का लाभ लेने के पहले ही या पश्चात तुरंत ही बोली के रुपये संघ की पेढ़ी में भर पाई करना चाहिए; कुछ महिने या सालभर के बाद ही पैसे देने होवे तो ब्याज सहित देने चाहिए। जिससे देव द्रव्यादि द्रव्य के भक्षण का पाप नहीं लगे। तुरंत ही पैसे संघ की पेढ़ी में भर-पाई करने से वे पैसे बैंक में रखने से ब्याज चालु हो जाता हैं कई साल तक चढ़ावे के पैसे भर पाई न करने वाले जब पैसे चुकाते है तब ब्याज देते ही नहीं इस कारण उनको देव द्रव्यादि के भक्षण का बड़ा भयंकर दोष लगता है।

व्यवहार में भी कोई आदमी किसी को ब्याज से रुपये उधार देता है तो उधार लेने वाले एक सप्ताह में ही वापिस वे रुपये लौटा देता है तब उधार देने वाला एक महिने का पूरा ब्याज ले लेता है न केवल सप्ताह का; तो फिर वह बोली आदि के पैसे तुरंत न चुकावे, कई महिनों या सालों के बाद चुकावे वे भी बिना ब्याज के; यह कितना अनुचित

है! इसीलिए शास्त्र में कहा गया है कि चढ़ावादि के पैसे तुरंत ही चुका दो, लंबना है तो ब्याज सहित चुकाओ तो आपको धन व्यय का सच्चा लाभ मिलेगा। तुरंत पैसे दे देने में एक लाभ यह भी है कि बोली बोलकर लहावा लेने के वक्त में अमाप उत्साह होने के वजह उसी समय में ही पैसे दे देनेमें अपूर्व कोटिका पुण्यबन्ध होता है। लेकिन उसी समय पैसे न दिये जाएं, पैसे देने में विलम्ब किया जावे तो पीछे पैसे देने में उत्साह मंद पड़ जाता है और उत्साह का भंग भी हो जाता है बिना उत्साह से पैसे भरपाइ करे तो पुण्य बन्ध में भी भारी मन्दता आ जाती है इसलिए हरेक पुण्यवान श्रावको की शास्त्राज्ञानुसार फरज है कि बोली बोलते ही पैसे भरपाई कर देना या विल्म्ब से भरपाई करना होवे तो ब्याज सहित भरपाई करना चाहिए जिससे अच्छे पुण्य बन्ध के भागीदार बन सके।

अपने यहां पुण्यवान उदारताशील ऐसे श्रावक हो गये कि चढ़ावे बोलकर तुरन्त ही पैसे भरपाई करते थे महामंत्रीश्वर पेथडशाने गीरनार तीर्थ के दिगम्बर के साथ विवाद में इन्द्र माल को पहिनकर गीरनार तीर्थ जैन श्वेताम्बर की मालिकी का करने के लिए ५६ धडी सोने का सद्व्यय करके चढ़ावा लिया था वह ५६ धडी सोना भरपाई करने के लिए ऊंटडिओ, पर अपने घर से सोना लाने के लिंए अपने आदमीओं को भेजे थे क्युकि सोना न आवे वहां तक अन्नपाणी न लेना

यह निर्णय था ५६ धंडी सोना लाने में दो दिन लगे, दो दिन के उपवास हुए तीसरे दिन पेढ़ी में ५६ धड़ी सोना चुकाकर पारणा किया। यह बात खास याद रखने जैसी है और याद रखकर जीवन में अमली बनाने जैसी है। जो बोली बोलो वह तुरन्त दे दो। हो सके तो बोली बोलने वालो ने पैसे भी जेब में लेकर आना चाहि। उघाई करने के लिए मुनीम वगेरे वहीवट करनेवाले को रखने पड़े यह रीत योग्य नही है। इसमें शाहुकारी नही रहती है। बोली के पैसे तुरन्त देना यह पहली शाहुकारी है, विलंब करते हुए भी यदि ब्याज सहित देवे तो दुसरी शाहुकारी है। वह ब्यांज भी बाजार भाव का होना चाहिए। स्वयं लेवे एक टका और देव चारा आना ब्याज, तो बारा आना खा जाने का दोष लगता है।

चढ़ावे की रकम तुरन्त न देने में कभी अकल्पित बनाव भी बन जाते है। श्रीमंताई पुण्य के अधिन है पुण्य खतम हो जावे और पाप का उदय जागृत हो जावे तो बड़ा श्रीमंत भी एकदम दरिद्री बन जाता है सब लक्ष्मी चली भी जाती है, जिंदगी तक जीवन जीने में भी बड़ी कठिनाईयां भोगनी पड़ती है उसी अवस्था में धर्मादा द्रव्य का देना कैसे चुकावे, अन्त में कर्जदार बनकर भवान्तर में जाना पड़ता है। धर्मस्थानो का देवा खड़ा रखना और मुनिम आदि को धक्का खीलाते रहना यह रीत लाभदायी तथा शोभास्पद नहीं है। अतः आत्मार्थी पुरुष आत्मकल्याण के लिए जो धन द्रव्य का सद्व्यय करना

नक्की किया है वह तुरंत ही दे देना वाजवी है।

जैन शासन में सर्वश्रेष्ठ कोटि का द्रव्य देवद्रव्य को माना गया है। उसको जानपने या अनजानपने में अपने उपयोग में लेना, खा जाना, नुकसान पहुँचाना तथा कोई खा जाता होवे, चोर लेता होवे हानि पहुँचाता होवे उसकी उपेक्षा करना यह सबसे बड़ा पाप है।

हिंसा के पाप में जैसे तीर्थंकर की हिंसा सबसे बड़ा पाप है उसी तरह देव द्रव्य का भक्षणादि करना इससे कोई बड़ा पाप नहीं है।

सामान्य तोर पर यह कहा जा सकता है कि एकेन्द्रिय जीव की हिंसा से बेइंद्रिय जीव की हिंसा में ज्यादा पाप है उससे तेइन्द्रिय जीव की हिंसा में ज्यादा पाप है इस तरह चारिन्द्रिय को तथा पंचेन्द्रिय जीव की हिंसा में उत्तरोत्तर ज्यादा ज्यादा पाप लगता है।

पंचेन्द्रिय में भी छोटे और भोले मृगादि जीवों की हिंसा की अपेक्षा शेर आदि क्रूर प्राणियों की हिंसा में ज्यादा पाप लगता है उससे मनुष्य की हिंसा में अधिक पाप लगता है। मनुष्य में भी एक सामान्य मनुष्य की हिंसा की अपेक्षा उत्तरोत्तर शेठ श्रीमंत शक्ति सम्पन्न तथा राजा, महाराजा चक्रवर्ती, साधु, उपाध्याय, आचार्य, गणधर-तीर्थंकर की हिंसा में अधिक-अधिक पाप लगता है क्योंकि एकेन्द्रिय से लगाकर तीर्थंकर तक के

जीव उत्तरोत्तर विशेष विशेष पुण्यवान होते हैं विशेष विशेष पुण्यवानों की हिंसा करने में उत्तरोत्तर हिंसक के दिल में निर्दयता और क्रूरता अधिक अधिक आती है।

उसी तरह कोई आदमी सामान्य किसी आदमी का धन खा जावे उसकी अपेक्षा जीवदयादि का द्रव्य खा जावे तो ज्यादा पाप का बन्ध करे उससे भी साधारण द्रव्य-श्रावदाकि का द्रव्य साधु आदि का द्रव्य-ज्ञान तथा देवद्रव्य का भक्षण करने वाले को उत्तरोत्तर अधिक अधिकतर और अधिकतम पाप का बन्ध होता है।

सब-जीवों में तीर्थंकर सर्वश्रेष्ठ है उसी तरह सब द्रव्य में देवद्रव्य सर्वश्रेष्ठ कोटि का द्रव्य है तीर्थंकर की हिंसा करने की प्रवृत्ति करने वाला जैसे घोर पपी है उसी तरह देवद्रव्य का भक्षणादि करने वाला भी घोर पापी है।

देवद्रव्य के भक्षणादि का ऐसा घोर पाप है कि देवद्रव्यादि का भक्षणादि करने वाले को इस जन्म में भी दरिद्रतादि की भयंकर यातनाएं भोगनी पडती है और जन्मान्तर में दुर्गतियों के चक्कर में अनन्त अनन्त बार घूमना पडता है, और अनन्तानन्त असह्य दु:ख भोगने पड़ते है।

एक मन्दिर के दीपक से अपने घर काम करने वाली देवसेन श्रेष्ठि की माँ की क्या दशा हुई? उसकी जानकारी के लिए उपदेश प्रासाद श्राद्ध विधि आदि ग्रन्थों में एक दृष्टांत

आता है-

इन्द्रपुर के नगर में देवसेन नाम के एक धनाढ्य सेठ रहते थे। हररोज उसके घर एक ऊंटडी आती थी। उसको बेडीया मार-मार के अपने घर ले जाता था। लेकिन वह ऊंटडी वापिस देवसेन सेठ के घर पर आ जाती थी। यह देखकर देवसेन श्रेष्ठि को बडा आश्चर्य हुआ। एक दफे ज्ञानी गुरू भगवन्त पधारे। उनसे देवसेन श्रेष्ठि ने पूछा भगवन् यह ऊंटडी बार-बार मेरे घर पर क्यूं आजाती है। तब ज्ञानी गुरू भगवन्त ने कहा कि यह ऊंटडी गत जन्म में तेरी माँ थी। वह हरहम्मेश जिनेश्वर भगवन्त के आगे दीपक करती थी और वही दीपक से अपना घर काम भी करती थीं जिनेश्वर भगवन्त के आगे किया दीपक देवद्रव्य हो जाता है अत: उससे घर काम करना, ये देवद्रव्य भक्षण के पाप में कारण बन जाता है। तेरी माँ जिनेश्वर देव के आगे रखे दीपक से अपने घर काम करती थी उसी तरह धूप के लिए रखी धूपदानी में जलते अग्नि से चूल्हा भी जलाती थी। इन दोनों पाप से तेरी मां ऊंटडी रूप से पैदा हुई। तेरे को और तेरे घर को देखकर उसको शान्ति होती है। अब तू उसको तेरे माँ के नाम से बुला और दीपक की तथा धूप की बात कर, उससे उसको जातिंस्मरण ज्ञान और प्रतिबोध होगा।

देवसेन सेठ ने गुरू भगवन्त ने कहे मुताबिक बात

की। अपना पूर्वभव सुनकर ऊंटडी को जातिस्मरण ज्ञान हुआ। गत जन्म में किये देवद्रव्य भक्षण के पाप का भारी पश्चाताप हुआ अरे! इस पाप से उत्तम कोटि का मानव जन्म गँवा कर जानवर में जन्म लिया अब मेरा क्या होगा। मैं धर्म कैसे कर सकूंगी। धर्म पाई। गुरू के पास सचित्तादि के त्याग के नियम लिए। सुन्दर जीवन जीने लगी। अन्त में शुभ ध्यान में मरकर देवलोक में गई।

इसलिए अपने पूर्वाचार्य कहते हैं कि मन्दिर की कोई भी चीज या उपकरण का अपने स्वयं के काम में उपयोग नहीं करना-जाकि देवद्रव्य के भक्षण का पाप न लगे।

जिस तरह मन्दिर की कोई भी चीज का अपने कार्य में उपयोग करना पाप है उसी तरह मन्दिर की कोई भी अच्छी चीज अदल बदल कर ले लेना यह भी भारी पाप बन्ध का कारण है और इस जन्म में भी दरिद्रतादि कई प्रकार से दुखदायी बनता है। इस बात को जानने लिए शुभंकर श्रेष्ठि की कथा उन्हीं शास्त्रों मे लिखी है। वह इस तरह है –

कांचनपुर नगर में शुभंकर नाम के सेठ रहते थे। संस्कारी और सरल स्वभावी शुभंकर सेठ को प्रतिदिन जिनपूजा और गुरू वन्दन करने का नियम था।

एक दिन सुबह में कोई जिनभक्त देव ने दिव्य चांवल से प्रभुभक्ति की। वह दिव्य चावल की तीन ढगलियां मन्दिर

के रंगमंडप में देखी। ये चावल अलौकिक थे तथा सुगन्ध से तन मन को तरबतर कर दे वैसे थे। शुभंकर सेठ को ये चावल देखकर दाढ में पानी आगया और विचारा के यदि ये चावल का भोजन किया होवे तो उसका स्वाद कई दिनों तक याद रह जावे।

मंदिर में जिनेश्वर देव की भक्ति में रखे चांवल तो ऐसे लिए नहीं जाते। क्या करना अब। अन्त में उसने रास्ता निकाला, अपने घर से चावल लेकर दिव्य चावल के प्रमाण में रखकर वे दिव्य चावल ले लिए। इस तरह मन्दिर के चावल का बदला किया। दिव्य चावल घर लेजाकर उसकी खीर बनाई। खीर की खूशबु चारों ओर फैल गई।

उस समय में मासोपवासी तपस्वी मुनि महात्मा का उसके घर में पदार्पण हुआ। सेठ ने मुनि महात्मा को खीर बहेराई। मुनि महात्मा खीर वहेर कर उपाश्रय तरफ जा रहे थे। रास्ते में दिव्य खीर की खुशबू पातरे को अच्छी तरह से ढंकने पर भी मुनि महात्मा के नाक तक पहुँच गई। मुनि ने न करने जैसा विचार किया। सेठ मेरे से भी बहोत भाग्यवान है कि वे ऐसा स्वादिष्ट और सुगन्धित भोजन प्रतिदिन करते है। मैं तो साधु रहा, मुझे ऐसा भोजन कहां से मीले, लेकिन आज मेरे भाग्य के द्वार खुल गये हैं आज तो स्वादिष्ट और सुगन्धित खीर खाने को मिलेगी। ज्युं ज्युं उपाश्रय तरफ आने

के लिए कदम उठाते आगे बढ़ रहे है, उसी तरह इन मुनि के मन में विचारधारा भी दुर्ध्यान तरफ आगे बढ़ती जाती है। अन्त में तो निर्णय कर लिया कि यह खीर गुरू को बताई तो वे सब खा जायेंगे इसलिए गुरूजी को खीर बताये बिना उनको खबर न पडे इस तरह एकान्त में बैठ कर खा लेना।

उपाश्रय में जाकर गुरू को खबर न पडे इस तरह छुप के से खीर अकेले ने खा ली।

खाते खाते भी खीर के स्वाद की शुभंकर सेठ के भाग्य की खूब-खूब मनोमन प्रशंसा करने लगे अ हा हा क्या मधुर-स्वाद! देवों को भी ऐसी खीर खाने को मिलना मुश्किल है। मैंने फजूल तप करके देहदमन किया। मुनि खीर खा के शाम को सो गये। प्रतिक्रमण भी किया नहीं। गुरू ने प्रेरणा की फिर भी वह सोते ही रहा। सुबह भी प्रतिक्रमण नहीं किया गुरू महाराज ने विचार किया। ये क्या हुआ? यह मुनि तो महान आराधक है साधु-जीवन की समस्त क्रियाएं प्रतिदिन अप्रमत्त भाव से करता था। मुझे लगता है कि इसने अवश्यमेव अशुद्ध आहार का भोजन किया है।

यह विचार गुरू महाराज कर रहे थे उस वक्त सुबह में शुभंकर सेठ गुरू भगवन्त को वन्दन करने आये। सेठ ने देखा मुनि महात्मा अभि तक सोये हुए हैं गुरू को इसका कारण पूछा। गुरू ने कहा यह मुनि गोचरी करके सोये सो

सोये। उठाने पर भी उठे नहीं। मुझे लगता है कि कल इसने कोई अशुद्ध आहार का भोजन किया होगा। यह सुनकर सेठ ने कहा कि कल तो मैंने ही गोचरी बेहराई है।

गुरू ने पूछा शुभंकर सेठ! आपको मालुम होगा कि बहेराया आहार शुद्ध और मुनि को खप में आवे ऐसा ही होगा।

शुभंकर सेठ नें सरल भाव से बिना छुपाये मन्दिर में से बदलकर लाए चावल से बनाई खीर की बात कर दी।

गुरू महाराज ने कहा शुभंकर, यह तुने ठीक नहीं किया। तुने देवद्रव्य के भक्षण का महान पाप किया है।

सेठ ने कंहा! हां गुरूजी उसके फल रूप मेरे को कल बहुत धन की हानि हुई।

गुरू ने कहा - तेरे को तो बाह्य धन की हानि हुई लेकिन इस मुनि को तो अभ्यन्तर संयम धन की हानि हुई है।

हे शुभंकर! इस पाप से बचना हो तो तेरे पास जो धन है उसका व्यय करके एक जिनमन्दिर बना देना चाहिये।

सेठ ने पाप से बचने के लिए एक मन्दिर अपने सारे धन से बनवाया।

रेचक जुलाब-की औषधि देकर साधु के पेट की शुद्धि की तथा पातरे की गोबर और राख के लेप लगाकर तीन दिन धूप में रखकर और उसके बाद शुद्ध जल से साफ कर शुद्धि की। मुनि महात्मा ने भी अपने किये अतिचार पाप का प्रायश्चित कर लिया।

इस दृष्टान्त से यह बात सिद्ध होती है कि देवद्रव्य का भक्षण हलाहल विष है अनजान में भी वह हो जावे तो इस जन्म में भी आदमी को नुकसान किये बिना नहीं रहता तो जानबुझ के खाने वाले की क्या दशा होवे।

इससे सब श्रावक को यही सीखने का है कि अधिक द्रव्य देकर भी देवद्रव्य की चीज़ अपने उपयोग में नहीं लेनी और परस्पर किसी को देनी भी नहीं।

देवद्रव्य के भक्षणादि के बारे में शास्त्र के अन्दर बहुत से दृष्टान्त दिये गये हैं उसको वांचकर-सुनकर देवद्रव्य के भक्षणादि से बचने के लिए प्रयत्नशील बनना चाहिए।

21